सम्पादकीय

प्रार्थना

भगवन् !

मैं तुम से क्या माँगूँ ? तुम्हारे पास है क्या? तुम सब कुछ दे दिलाकर सब प्रकार से आज़ाद (मुक्त) होकर विचित्र रूप में नज़र आरहे हो। लोग कहते हैं तुम सब कुछ हो और कुछ भी नहीं। मन की तुम तक पहुंच नहीं। वाणी और बुद्धि की तुम तक पहुँच कठिन है। तो फिर मैं मांगूं भी तो कैसे मांगूँ और क्या माँगूँ ? आज़ाद (मुक्त) से उसकी आज़ादी मांगना अच्छा नहीं। धनी से उसके धन की लालसा रखना व्यर्थ ही है। इसके सिवाय जब मैं ध्यान करता हूँ तुम में धन, शक्ति, शासन, आदि कुछ भी तो नहीं पाता तुमने लक्ष्मी विष्णु को देदी। लक्ष्मी विष्णु भगवान की पटरानी हैं। मैं कैसे कहूं कि तुम लक्ष्मी मुझको देदो ? मुझको विष्णु भगवान के साथ दुश्मनी और विरोध मोल लेना मंजूर नहीं है। तुमने शक्ति,ज़ो और बल शिवजी को प्रदान कर दिया है। शक्ति उनकी अर्धाङ्गिन है। मैं कैसे कहूं कि शक्ति मुझको दो ? यह पूर्ण रूप में उनका अपमान और निरादर होगा। मैं कैसे कहूं कि तुम मुझको विद्या और बुद्धि दो ? विद्या और बुद्धि दोनों का नाम गायत्री और सावत्री है। यह ब्रह्माजी की पत्नि हैं। ब्रह्माजी यूँ ही चार मुखों के आठ नेत्रों से चारों ओर देखते रहते हैं। उनको क्रोधित करना नादानी है। और फिर वह बड़े बूढ़े ठहरे सभ्यता और शिष्टाचार की लोक लाज भी तो आख़िर रखनी ही पड़ती है मैंने भली भांति विचार करके देख लिया तुम सब चीजें औरों को दे दिला कर आप सब से अलग थलग बन बैठे हो। तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। इस कारण तुमसे मांगना भी बिलकुल नीचता है। मेरी ढीठता को क्षमा करो ? मैं कुछ नहीं मांगता। और न सवाल करने के हित से तुम्हारे पास आया हूँ। हां यदि तुम यह सम-

हो कि मेरे पास कुछ है तो वह सब लेलो। यह सब तुम पर निछावर हैं मैं खुद तुम पर निछावर हूं। मेरी दीनता, मेरी दरिद्रता, मेरी बेवसी, मेरी नादानी, मेरी भावुकता, मेरी ग़रीबी यदि तुम्हारी दृष्टि में अपनाने योग्य वस्तु हों तो इन को भी मैं हित चित से तुम्हारे अर्पण करता हूं। तुम्हारे चरणों पर निछावर करने को हर दम तयार हूं। इनको ग्रहण करो मेरे मन के भाव और उमंगों को, मेरे नेत्रों की ज्योति और दृष्टि को मेरे कानों और इनकी श्रवण शक्ति को मेरी जिभ्या की वाणी और विलास को मेरे चित्त के चिन्तन और चतुराई यह सब और इनके अतिरिक्त और जो कुछ है वह लेकर अपना बना लो? मुझको इनकी आवश्यकता नहीं है। यदि यह तुम्हारे अर्पण और समर्पण हो जायँ तो मैं अपने आप को बड़ा ही बड़भागी समझूंगा। धन, बल, शक्ति और दिव्य दृष्टि प्रथम तो यह वस्तुयें मेरे पास नहीं हैं पर यदि इनकी इच्छा का अंकुर मन में कुछ शेष रह गया हो तो वह भी तुम ही ले ले? मुझको इनकी आवश्यकता नहीं है

लोग कहते हैं तुम सत हो, चित हो आनन्द हो, शुद्ध हो, मुक्त हो, बुद्ध हो, यह सब तुम ही को शोभित रहें! शुद्ध पना, मुक्तपना, बुद्धपना इन में से भी मुझको किसी की ज़रूरत नहीं है। जो तुम्हारा है वह तुम्हारे ही पास रहे। और यदि मैं भी तुम्हारा ही हूं। तो फिर तुम जानते ही हो कि जो जिसका है वह उससे दूर कब रह सकता है। इस लिये मैं हैरान हूँ! चकित हूं! कि तुम से मांगू भी तो क्या मांगू? पर न मांगना भी सभ्यता और शिष्टाचार के विरूद्ध है, निरादर है इस दृष्टि से मांगने को विवश हूं।

नाम दान मोहि सतगुर दीजै। काल सतावै स्वांसा छीजे॥
मांगूँ नाम न मांगूँ मान। जस चाहो तस दो मोहि दान।
किन का नाम करे मेरा काज। हे सतगुरु तुम्हें मेरी लाज।
अब तो मन कर चुका पुकार। राधा स्वामी करो उद्धार॥

भवदीय—नन्दू भाई एडीटर "शिव"

शब्द—इष्ट पद

१—मेरे तन में राधा स्वामी राधा स्वामी धाम है।
मेरे मन में राधास्वामी राधास्वामी नाम है॥
२—राधास्वामी राधास्वामी रात दिन रटता रहूं।
राधास्वामी जोग जुक्ति से मुझे विश्राम है॥
३—प्रेम राधास्वामी का है भक्ति राधास्वामी की।
राधास्वामी ज्ञान पाया, जगत से उपराम है॥
४—राधास्वामी व्यापक एड़ी से चोटी तक हुये।
राधास्वामी इष्ट हैं, राधास्वामी ही से काम है॥
५—चुप रहो उपदेश देने वालो! तुम लिखते हो क्या।
राधास्वामी की लगन जब मुझको आठो जाम है॥

—नम्र निवेदन—

"शिव" की दो तरङ्ग "क़ानून ख्याल" व "आदर्श भारती वीरागनायें" भेंट हो चुकीं यह तीसरी तरङ्ग जा रही है। प्रिय सज्जनों को विदित हो गया होगा कि इसके विषय किस प्रकार चित्त पर अपना अभाव डालकर जीवन में एक नये परिवर्तन का संचार करते हैं और आगे भी एक से एक बढ़कर प्रभावशाली पुस्तकें भेंट करने का यत्न जारी रहेगा। यदि आपने इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने में हमको २–२ ग्राहक बढ़ाकर सहयोग प्रदान किया तो वह दिन दूर नहीं जब यह पत्र इस परोपकारी निष्काम सेवा को और भी उत्साह के साथ बड़े २ धार्मिक ग्रन्थों को भेंट करने में प्रयत्नशील बना रहेगा और 'सर्वप्रिय बन जायगा तरङ्गों के साथ कुछ सज्जनों को पत्र भी लिखे गये हैं। आशा है उनके उत्तर देने की कृपा करेंगे।

'शिव' साहित्य प्रकाशन की वार्षिक भेंट जिन सज्जनों ने भेज दी है हम उनके बड़े कृतग्य हैं। जिन्होंने नहीं भेजी वे शीघ्र ही मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें जो सुचारू रूप में काम चले। वी० पी० पी० से मंगाने में व्यर्थ का खर्च अधिक पड़ जाता है।

जिन सज्जनों ने इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने में हमारी सहायता की है हम उनके भारी आभारी हैं। आशा है अन्य सज्जन भी इस ओर ध्यान देंगे।

इसकी रजिस्टरी कराने का प्रार्थना पत्र पोस्ट मास्टर जनरल डाकखाने जात लखनऊ के दफ्तर में भेजा गया है वहाँ से जिन ग्राहकों से पूछा जाय वे उसका उत्तर शीघ्र ही वहाँ को भेजने की कृपा करें जिससे रजिस्टर नम्बर मिलने में देरी न हो।

उर्दू में "दयाल" पत्र उर्दू सज्जनों के लाभार्थ श्रीमान नन्दूसिंह जी महाराज शिव साहित्य प्रकाशन मंडल दयाल भण्डार केशोंगिरी हैदराबाद दकन से ८-१० वर्ष से निका ल हे हैं उसका चन्दा अब ६) से घटा कर केवल ३=) वार्षिक कर दिया है। जो महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज के अनमोल विचारों का दर्पण है और घर बैठे सतसङ्ग का लाभ देगा। हमारे सामने उसका मार्च का नम्बर "सतसंग की हक़ीक़त" है जो सतसङ्गी भाइयों के परम लाभ की वस्तु है जिसका ज्ञान भले प्रकार उसके पढ़ने से ही चल सकता है। हमारी सानुरोध प्रार्थना है कि आप उसको एक बार जरूर मंगावें।

"मनुष्य बनो" पत्र दयाल पं० फ़क़ीर चन्द जी महाराज की संरक्षता में दयाल कम्पाउण्ड, पेच जामाजी अलीगढ़ से निकल रहा है। जिसमें सन्त मत के प्रचार को बड़े अनूठे ढंग में सन्त अमृत वाणी द्वारा समझाने का भरसक प्रयत्न किया जाता है आशा है जिज्ञासु जन उसको मंगा कर लाभ उठायेंगे जो कोई सज्जन चाहें तो 'शिव' और "दयाल उर्दू" पत्र दोनों को "मनुष्य बनो" के दफ्तर से मंगा सकते हैं।

भवदीय—
लल्ला भईया (बाल मुकन्द)
मैनेजर 'शिव'
पो० दयाल नगर जि० अलीगढ़

RS

शिव

वर्ष १] मई सन् १९५५ ई० [तरंग ३

सत् गुरु के चरण कमलों में

प्रार्थना

१—जहाँ आँख खोली, वहीं तुझको पाया।
कहीं जोत था तू, कहीं था तू छाया॥
२—कमल है कमल का, बना रूप तुझ से।
हुआ मक्खी और बास लेने तू आया॥
३—पवन है आकाश आग, मिट्टी है पानी।
तू सब कुछ है और सब में रहता है छाया॥
४—कहीं होके परगट, दिया सब को दर्शन।
कहीं छुप गया, छुप के छवि को दिखाया॥
५—छुपा आग के रूप, चकमक में बैठा।
हरी मिंहदी में लाली का रंग लाया॥
६—जिधर देखता हूँ, तुझे देखता हूँ।
मेरी दृष्टि में आप तू ब्रह्म माया॥
७—दया राधास्वामी की मुझ पर हुई है।
परम सन्त अवतार धर कर चिताया।

भूमिका

दृष्टान्तों की सहायता से गूढ़ से गूढ़ विषय भी सुगमता के साथ समझ में आजाते हैं क्योंकि गूढ़ और सूक्ष्म विषय उस समय तक सर्व साधारण की समझ में नहीं आते जब तक उनको स्थूल रूप न दिया जाय। कथा वार्त्ता के सिलसिले में ऊँची से ऊँची बातें साधारण मनुष्य भी समझ सकता है। कथायें रोचक होती हैं उनसे और उन की सहायता से जो बातें समझाई जाती हैं वह बहुत दिनों तक नहीं भूलतीं सच्ची बात तो यह है कि वह सदैव के लिए हृदय में बैठ जाती हैं और भुलाने से भी नहीं भूलतीं वह भ्रम और भ्रान्ति में फँसे हुये लोगों को सीधी राह पर लाती हैं। और उनकी सहायता से मनुष्य जीवन सुधर जाता है। ज्ञान ध्यान की बातें साधारण रीति से रोचक नहीं जान पड़तीं परन्तु जब उन्हें कथाओं के रूप में वर्णन किया जाता है तो वह न केवल विचित्र ही प्रतीत होती हैं किन्तु सुनने वाले के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं हम भी इस अवसर पर उसी से सहायता लेते हैं। इस नम्बर में अनेक विषयों को दृष्टान्त द्वारा उत्तमता के साथ समझाने का यत्न किया गया है। आशा है इसके अवलोकन से विशेष आनन्द आयेगा और सोचने विचारने के लिए बहुत से विचार मिलेंगे यदि ऐसा हुआ तो हमारा परिश्रम सफल है नहीं तो अकारथ ही समझो। इस से अधिक क्या कहें!

शिवव्रत लाल

अधिकार

जाको रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ॥

अधिकार और संस्कार के समझे बिना जो कोई काम करता है उसे सफलता प्राप्त नहीं होती किन्तु असफलता का भय पग पग पर रहता है। सन्त कहते हैं:—"जगत की रचना सुरत और शब्द का खेल है!" सुरत ध्यान (ख़याल को) कहते हैं। जिसका जैसा विचार या ध्यान है वह वैसा ही काम करने के लिये रचना में बनाया गया है। उसकी रुचि और उसका अधिकार संस्कार भी वैसा ही होता है यह संसार द्वन्द स्थान है। द्वन्दपना ही सृष्टि की जान है। यहाँ किसी दो वस्तुओं में भी समता और सदृशता नहीं दिखलाई देती। जो है वह है। एक बाप के दो बेटे, एक पोदे के दो पत्ते, एक मनुष्य के दो चित्र, एक छापे की दो पुस्तकें एक तरह की नहीं मिलेंगी। उनमें भिन्नता अवश्य प्रतीत होगी क्योंकि सृष्टि का नियम ही ऐसा है। प्रत्येक जीवन का उद्देश भिन्न भिन्न है कोई कुछ है कोई कुछ है। सूर्य चमकता है, बादल गरजते हैं पानी बहता है, हवा चलती है। इनमें से हरएक के रूप रंग चाल ब्योहार अलग अलग हैं। यदि यह अपना काम करते हैं तो अच्छे लगते हैं और यदि दूसरे की रीस [नक़ल] करते हैं तो भद्दे बन जाते हैं।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य जीवन की दशा है। सब को कोई न कोई काम दिया गया है। यदि अपने स्वभाव और मानसिक फुरना की निरख परख करते हुये लोग काम करें तो सम्भव नहीं कि उन्हें सफलता देवी का दर्शन प्राप्त न हो परन्तु शोक की बात

तो यह है कि द्वेश, ईर्षा लोभ और होड़, रीस में पड़कर मनुष्य अपना मुख्य काम तो देखता नहीं और यों ही दूसरों का अनुकरण करने लग जाता है। तेली का काम तँबोली से नहीं होता।

"जिसका काम उसी को साजे।
और करे तो डंडा बाजे॥"

लोगों के जीवन नष्ट हो रहे हैं। बिना समझे बूझे लोग भूल भ्रम में फँसकर बेतुकेपन की राह चले जा रहे हैं।

हम से बहुत से लोग मिलने आते हैं जिनकी अवस्था अस्सी अस्सी साल की है। भक्ति भाव की राह में आये हुये पचासों वर्ष हो गये परन्तु परिणाम कुछ भी नहीं—"वही ढाक के तीन पात।" कारण यह है कि पहिले अपने अधिकार को नहीं देखा और न यह पता लगा कि वह संसार में अपने स्वभाव के अनुसार किस काम के लिये निर्दिष्ठ होकर आये हैं और उनको क्या काम किस प्रकार करना चाहिये, दूसरे किसी जानकार और अनुभवी गुरू से सम्मति तक नहीं ली जो इनके अन्तरी भाव को समझ कर उनको सीधी राह पर लगाता। अब पछताते हैं परन्तु पछताने से होता क्या है? अच्छा चलने दो। दूसरे जन्म में तो सुधार होना ही है। मन की कुरेदने वाली शक्ति दबा दी गई परन्तु वह भीतर ही भीतर अपना काम करती चलेगी और अवसर पाकर अपना काम बनायेगी। बीज खेत में पड़ा हुआ है। वह नष्ट नहीं जायेगा। कभी न कभी उसमें अँखुआ फूटेगा और फल फूल अवेंगे। हाँ! यह अवसर तो हाथ से जाता ही रहा। अब इसका हाथ आना महा कठिन है।

संसार में बहुत से काम देखा देखी किए जाते हैं। समझ नही, बूझ नहीं, जो औरों को करते देखा उसी के पीछे चल पड़े। अपने अधिकार और संस्कार का ज्ञान प्राप्त नहीं किया इसका परिणाम तो दुःख होना ही है। एक ही काम संसार में

दो मनुष्यों के लिये ठीक नहीं होता। जिन लोगों को जीवन में सफलता प्राप्त हुई है उनमें से दो मनुष्यों के कार बार, स्वभाव और व्यौहार एक जैसे कभी न मिलेंगे। किसी के लिये कोई ढङ्ग उचित और लाभदायक है, किसी के लिये कोई। न यहाँ एक से दो अवतार मिलते हैं न एक जैसे दो देवता दिखलाई देते हैं। जो है वह है। प्रत्येक मनुष्य अपना अधिकार साथ लाया है और भलाई भी कुछ इसी बात में है कि अपने संस्कार और अधिकार के अनुसार उन्नति का यत्न किया जाये। इसीलिये कहा गया है और कहा जाता है कि बिना गुरू के भक्ति मार्ग में कभी न चलो नहीं तो धोका खाओगे। वाणी है:—

"बिन गुरु घट में राह न चलना।
डर और विघ्न अनेकन [illegible]ना ।।
गुरु रछा जाके सँग नाहीं।
ताको काल कर्म भरमाहीं ।।"

दो बातें तो यह हुईं। तीसरी बात यह है कि जब अपना अधिकार और संस्कार समझ में आगया और राह में चल पड़े तो इसमें सच्चा होकर लगना चाहिये और इस एकागृता और सच्चाई से काम करना चाहिये कि सुरत की धार दूसरी ओर न जाने पावे नहीं तो फिर बने बनाये खेल के बिगड़ जाने का भय रहता है। सारी बात एकाग्रता पर निर्भर है। जैसा काँछ काँछो वैसा नाच नाचो। जो सच्चा होकर लगेगा वह शीघ्र ही अनुभव सम्पन्न होने लगेगा।

साईं आगे साँच हो, साईं साँच सोहाय।
भावे घर में बास कर, भावे बन में जाय ।।

दृष्टान्त (१)—किसी स्त्री को किसी पुरुष के साथ प्रेम था। प्रेम सच्चा था। वही उसके जीवन का आधार और आदर्श बना हुआ था। उसके अतिरिक्त वह किसी और को नहीं चाहती थी क्योंकि प्रेम का गुण है कि जब वह आकर मन में बस जाता है फिर किसी भाव को रहने नहीं देता। सबको निकाल कर बाहिर कर देता है।

जहाँ बाज ❀ बासा करै, पंछी रहै न कोय।
जा घट प्रेम प्रगट भया, तहां न बिकलप होय॥

स्त्री उसी के प्रेम में मस्त रहती थी। खाना, पीना, सोना सब कुछ छूट गया था। महीनों बीत गये उसे अपने प्रीतम का दर्शन नहीं मिला। वह घबराती थी। अन्त में पता लग गया कि वह किसी स्थान पर आकर ठहरा है। इसे चैन कहां! वह चल खड़ी हुई। दीवानी, बावली! यह उसी के ध्यान में मग्न होकर उससे मिलने जा रही थी। राह में अकबर का खेमा खड़ा था। वह अपने खेमे से बाहर जानिमाज़✱ बिछा कर निमाज़ पढ़ रहा था। उसे बादशाह का कहाँ ध्यान था! वह उसकी जानिमाज़ को अपने पाँव से रौंदती हुई चली गई। अकबर को क्रोध तो आया परन्तु निमाज़ पढ़ते समय क्रोध को रोकना ही पड़ा। वह गई और अपने प्रीतम से मिलकर हँसती हुई उसके साथ लौट आई। बादशाह निमाज़ पढ चुका था। उसको देखकर बोला 'क्योंरी पापिन! तुझको यह ध्यान नहीं था कि यह जानिमाज़ है? तू इसको अपवित्र पावों से रौंदती हुई चली गई!"

स्त्री जो प्रेम में मस्त थी निर्भयता के साथ मुसकाराई क्योंकि प्रेम मनुष्य को अभय और अचिन्त बना देता है।

❀ बाज़ एक शिकारी चिड़िया है।

✱कपड़ा जिसे बिछाकर मुसलमान निमाज़ पढ़ते हैं।

उसने कहा:—

"नर राची सूझी नहीं, तुम कस लख्यो सुजान ?
पढ़ कुरान बौरे भयो, नहिं राचा रहिमान ॥"

अर्थ—"महाराज ! मैं तो मनुष्य के प्रेम में बावली थी, न आपको देखा न आपके जानिमाज़ को देखा परन्तु आपने मुझको कैसे देख लिया ? जान पड़ता है कुरान पढ़कर आप बावले हो गये और मालिक के सच्चे प्रेम ने आपके हृदय में जगह नहीं की।"

बादशाह इस उत्तर से बहुत ही लज्जित हुआ।

ऐसे ही प्रेम के मार्ग में भाँड़ नहीं बनना चाहिये। सच्चे बनो और सच्चे होकर लगो तब तो इसका स्वाद मिलेगा और यदि योंही रीस करते हो तो फिर भाँड़ के भाँड़ बने रहोगे, न प्रेम का आनन्द मिलेगा और न असलियत की असझ आयेगी।

दृष्टान्त (२)—लखनऊ में एक प्रसिद्ध भाँड़ (नक़ल करने वाला) रहता था। जो नक़ल करता था सच्ची कर दिखाता था। उन दिनों लखनऊ के नवाब वाजिदअली शाह थे उनके समय में नाचने वाले, गाने वाले और भाँड़ों की बन आई थी। बादशाह ने भाँड़ को योगी की नक़ल करने की आज्ञा दी। वह पद्मआसन पर जम कर बैठ गया और साँस चढ़ा ली। नाड़ी चलना बन्द हो गई। साँस एक दम रुक कर समाधि लग गई। देखने वाले घबरा गये। बहुतों को निश्चय हो गया कि यह मर गया है परन्तु आसन पर जमकर बैठे रहने से बादशाह ने कहा, "नहीं, यह जीता है।" घंटों बीत गये। वह अकड़ा बैठा रहा। बहुत देर पीछे समाधि टूटी। वह कहने लगा, "अन्नदाता ! आज तो पाँच सौ रुपये इनाम मिलें।"

देखा ! यह भाँड़ों की मज़दूरी है । जो मनुष्य जिस विचार को लेकर काम करता है उसका आदर्श वही विचार हो जाता है और अन्त में वही फुरता भी है । इसलिये इस बात की भी आवश्यकता है कि अधिकारी दिखावे में न फँस जाये । वह इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खे कि हमारे साधन अभ्यास का मुख्य उद्देश्य क्या है । किसी ने भाँड़ की तरह योग का भी साधन कर लिया तो क्या हुआ ! इसकी दृष्टि सिद्धि ही शक्ति तक रही । सच्चाई का साक्षात्कार नहीं हुआ जो योग का मुख्य अभिप्राय था ।

प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकतायें अलग अलग हैं । सृष्टि का यह नियम है कि जिसको जिस वस्तु की सच्ची चाह होती है वह मिल रहती है । यदि दूसरा मनुष्य इसकी होड़ रीस करे तो अन्त में उसे लज्जित होना पड़ेगा । रोगी के लिये कभी कभी थोड़ी सी संखिया भी अमृत का काम दे जाती है परन्तु आरोग्य मनुष्य के लिये यह हलाहल विष है । पूरब में एक कहावत कही जाती है– "किसी को बैंगन पथ्य किसी को बैंगन ज़हर ।" धार्मिक विषय में भी ऐसा ही समझो । एक मनुष्य है जिसने अपने जीवन के आदर्श को अधिकांश में पूर्ण कर लिया है, थोड़ी सी कसर रह गई है । वह साधारण अभ्यास कर रहा है । यदि वह मनुष्य जो अभी अभी राह में आया है उसकी रीस करे और उसी का रंग ढङ्ग ग्रहण करना चाहे तो उसे लाभ के बदले हानि पहुँचेगी । इसी लिए कहा गया है—"गुरू की आज्ञानुसार काम करो, उनकी चाल न चलो ।" पूर्ण और अपूर्ण मनुष्यों में आकाश पाताल का भेद होता है । वह आत्मज्ञान की चोटी पर हैं, तुम अभी अभी राह में आये हो । तुम्हारा अधिकार और तरह का है ।

दृष्टान्त (३)—लाहौर में एक महात्मा हुये हैं जिन का

नाम लाल माधव या माधव लाल था। यह छोटे और सुन्दर बच्चों को गोद में लेकर प्यार किया करते थे। इनके इस स्वभाव से लड़कों के माता पिता बहुत ही प्रसन्न रहा करते थे और इनकी आवभगत हुआ करती थी। किसी मुसलमान फ़क़ीर ने जो हृदय का मलीन था यह दशा देखी और इनके साथ हो गया। जो काम यह करते थे वह भी करने लगा। पंजाब में फ़क़ीरों का आदर सत्कार बहुत होता है। इसकी भी मान प्रतिष्ठा बढ़ गई और यह इसी का भूका था। बाबा लाल माधव ने इसकी दशा देखी और हंस पड़े। एक दिन आप चले जाते थे, राह में एक साँप पड़ा हुआ था। यह उसे भी उठाकर प्यार करने लगे। फिर सांप को उस मुसलमान फ़क़ीर के पास रख दिया। वह डर से भाग गया! फिर उसने इनका अनुकरण करना छोड़ दिया।

—❀—

दृष्टान्त (४)—राधास्वामी धाम से छः मील पर महाराज साहिब बनारस के राज की सदर कचहरी है। इस जगह का नाम 'ज्ञानपूर' है। महाराजा साहिब की सब कचहरियाँ भी यहीं हैं। यहाँ दो मुख़्तार रहते थे। एक सीधे सादे और हँसमुख थे। दूसरे भी सज्जन थे परन्तु उनमें रीस करने का स्वभाव था और जो कुछ पहिले मुख़्तार को करते देखते थे आप भी वैसा ही करते थे। एक बार पहिले मुख़्तार ने भैंस मोल ली और अपने द्वार पर बँधवा दिया। दूसरे मुख़्तार साहिब को भी पता लगा। उन्होंने भी एक भैंस मँगवाई। किसी ने पहिले साहिब से जाकर यह बात कह दी। उन्हों ने उसे बेचकर गाय मोल ली। इन्होंने जो सुना झट भैंस के बदले गाय लेकर बाँध दिया। पहिले मुख़्तार ने अब गाय की जगह बकरी मँगाई। दूसरे साहिब ने भी ऐसा ही किया। अब तो स्पष्ट रीति से पता लग गया कि दूसरे को पहिले की होड़ है। उन्हें जो दिल्लगी सूझी इन्होंने एक धोबी के यहाँ से गदहा मँगवा-

कर अपने द्वार पर बाँधा और उन्हें कहला भेजा, "साहिब ! आज मेरे यहाँ गदहा बँधा है, तुम भी बाँधो तब तो बात है।" पूरब में गदहा बाँधना तो दूर रहा इसका छूना भी पाप समझा जाता है। यह सिटपिटाये और मन में बहुत ही लज्जित हुये । ऐसी रीस बुरी होती है।

भजन बन्दगी में भी देखा देखी काम करने या होड़ करने से हानि पहुँचती है। लोग समझते नहीं और बिना समझे बूझे काम करते हैं। **परम सन्त कबीर साहिब** की बाणी है:—

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न लागै रंग।
बिपत पड़े पर छांड़ई, ज्यों केचुली भुजंग॥"

दृष्टान्त (५)—एक कंगाल ब्राह्मण दुखी रहता था । दिन भर मांगे और दीवा भर पावे। यही उसकी दशा थी। ब्राह्मणी ने कहा, "दूसरी जगह जाओ। जगह बदलने से सम्भव है भाग्य भी पलट जाये।" इस दुखिया ने कहीं पड़ौस से नाज लाकर सत्तू बनाया और अपने पति को देकर बिदा किया। उसने थोड़ी दूर आकर पीतल के लौटे में सत्तू डाल कर वृक्ष की डाली से बांध दिया और आप उसके नीचे बैठकर अपने भाग्य को कोसने लगा साथ ही शिव जी महाराज से उसने प्रार्थना भी की कि यह दशा कब तक रहेगी ? रोते झींकते कुछ देर हो गई और वह गहरी नींद में सो गया। शिव भगवान पार्वती जी के साथ उधर से निकले। सत्तू की सुगन्धि पाकर वृक्ष की ओर चले आये जहां ब्राह्मण सो रहा था। पार्वती जी ने कहा, "सृष्टि नाथ ! यह ब्राह्मण महा कंगाल है। ऐसी दया कीजिये कि इसका दुख दरिद्र दूर हो जाये।" शिवजी ने उसका लोटा ले लिया और उसकी जगह सोने का लोटा लटका दिया। इस लोटे में यह गुण था कि जो कुछ उससे

मांगा जाय वह तत्काल ही दे दे। शिवजी तो कैलाश पर्वत पर चले गये। ब्राह्मण की नींद खुली, सोचा—"यदि इस समय हलुआ पूरी मिलते तो पेट भर कर खाता।" लोटा उतरा, देखता क्या है कि पूरी हलुआ लोटे में रक्खा हुआ है। फिर तो संतुष्ट होकर भोजन किया। पानी की इच्छा होते ही पानी भी उसमें मिल गया अब इसे पूर्ण विश्वास हो गया कि किसी देवता ने दया करके उसे यह लोटा दिया है। वह प्रसन्न होकर घर लौट आया। इसके दिन फिरे। अब सुख आनन्द से रहने लगा। किसी धनवान पड़ौसी ने यह बात सुनी। वह भी स्त्री से सत्तू लेकर चला। कुछ दूर जाकर लोटे में सत्तू भर कर वृक्ष से लटका दिया और आप तान कर सो रहा। संयोग वश उस समय भी **शिव जी** उधर से आ निकले। **पार्वती** जी बोलीं, "देखो! यह धनवान मनुष्य भी लालच वश सोने का लौटा लेने आया है।" **शिव जी** हँसे "अच्छी बात है। इसे इसका फल मिल जायेगा।" वह तो चले गये। इसने उठ कर जो लोटे को उतारा तो वह मिट्टी का हो गया था और उसमें बिच्छू और कनखजुरे भरे थे। जान बचा कर भागा और फिर कभी ऐसा साहस नहीं किया।

मनुष्य को जिस वस्तु की आवश्यकता होती है सृष्टि में वह उसे अवश्य ही मिल रहती है। हाँ उसके लिये सच्ची चाह और तड़प होनी चाहिये।

दृष्टान्त (६)—हमको याद है जब हम कालिज में पढ़ते थे एक बार कई लड़कों के साथ बैठकर हम भी उनकी तरह हँसी दिल्लगी करने लगे। **मास्टर मुरली मनोहर साहिब** का मालिक भला करे। वह भी हम लोगों के साथ बैठे थे। आजकल वह

महाराजा साहिब रीवाँ के दरबार में हैं। हमसे कहने लगे, "देखो हँसी दिल्लगी तुम्हें शोभा नहीं देती। ईश्वर ने तुम्हें स्वाभाविक सुशील और गम्भीर बनाया है।" हम उस समय से सँभल गये और फिर हँसी दिल्लगी से अलग थलग रहने लगे क्योंकि हम भी समझ रहे थे कि यह हमारे अपने स्वभाव के विरुद्ध है। स्वभाव विरुद्ध काम करना मूर्खता है। परन्तु संसार में कितने मनुष्य हैं जो इस नियम का पालन करते हैं! कहीं भी इसका ध्यान नहीं रक्खा जाता। लड़का स्वाभाविक साइन्स विद्या का प्रेमी है। माँ बाप चाहते हैं कि वह वकील बने। देखो! यह कितनी बड़ी भूल है। यही दशा धार्मिक विषय में भी है। जिसको कर्म का अधिकार है उसको उपासना में लगाया जाता है। जिसने अभी तक उपासना का अर्थ भी नहीं समझा उसे ज्ञान की पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं। ऐसा कर्म धर्म पढ़ना लिखना सब व्यर्थ है। यदि नियमानुसार शिक्षा दी जाये तो उसका कोई अच्छा फल भी निकले। यही कारण है कि सन्तों के यहाँ सिलसिले के साथ शिक्षा दी जाती है परन्तु उसकी प्रणाली गुप्त रीति से चली आती है जिसे सर्व साधारण नहीं जानते। यह बातें पुस्तकों में नहीं मिलतीं। यह केवल गुरु द्वारा प्राप्त होती हैं।

१—वस्तु कहीं ढूँढै कहीं केहि विधि आवै हाथ।
कह कबीर जब पाइये भेदी लीजै साथ॥
२—भेदी लीया साथ कर दीन्ही वस्तु लखाय।
कोट जन्म का पन्थ था पल में पहुंचा जाय॥
३—घट का परदा खोलकर सनमुख ले दीदार।
बाल सनेही साइयां आदि अन्त का यार॥
४—गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है गढ़ गढ़ काढ़े खोट॥
भीतर हाथ सहार दे ऊपर मारे चोट॥

परिश्रम की शुद्ध कमाई

परमार्थ कमाने के लिए सब से पहिली बात यह है कि परिश्रम और गाढ़े पसीने की शुद्ध कमाई हो। जो हराम की रोटी खाता है उसको अधिकार नहीं है कि वह परमार्थ की राह में आवे। जो परिश्रम के साथ उचित रीति से कमाया जाये वह तो शुद्ध कमाई है और जो किसी तरह सताकर प्राप्त किया जाये या जिसके लेने का हमें अधिकार नहीं है और जिसके लिये हमने उचित परिश्रम नहीं किया है वह हराम है। अनुचित रीति से परिश्रम की कमाई भी हराम ही है।

सारी बात मन की पवित्रता पर निर्भर है। यदि मन पवित्र है तो उसके विचार भी पवित्र होंगे। विचार की शुद्धता, पवित्रता और निर्मलता से चित्त में एकाग्रता आती है। चित्त की एकाग्रता से अपने अन्दर आत्मा का प्रकाश दिखाई देगा और साक्षात्कार का अवसर मिलेगा। यदि मन अपवित्र है तो वह मूढ़ होगा। मूढ़ता में आलस्य और सुस्ती है। यही आलस्य मन को महा स्थूल बना रखता है। यदि इस दर्जे से कुछ बढ़ गया तो फिर चंचल रहेगा और चंचल मन में भ्रान्ति और नाना प्रकार के सन्देह उत्पन्न होंगे जो भ्रम और पाप के रूप में काम करेंगे। भ्रम और भ्रान्ति के रहते हुये चित्त एकाग्र नहीं हो सकता और चित्त के एकाग्र न होने से साधन और अभ्यास में पूरा उतरना असम्भव है। लोग ध्यान में बैठते हैं परन्तु मन एकाग्र नहीं होता। वह अन्दर ही अन्दर उत्पात मचाता रहता है। कभी आकाश पर चढ़ता है। कभी नीचे पाताल में गिर जाता है। झील की लहरों के सदृश उनके चित्त की वृत्तियाँ होती हैं और वह जमकर बैठने या किसी विशेष विचार पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ होने में बाधक होती हैं।

मन के परमाणु, भोजन से बनते हैं । इसलिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जो कुछ खाया जाये वह शुद्ध और पवित्र हो । आहार जितना ही पवित्र होगा उतना ही मन पवित्र बनेगा और आत्मज्ञान की प्राप्ति में उतना ही सहायक भी होगा ।

आहार के विषय में कई बातें ध्यान देने योग्य हैं—(१) कभी भी किसी को दुखी करके न प्राप्त किया जाये क्योंकि इसमें उस दुखिया के दुख के संस्कार मिले रहेंगे जो मन को अपवित्र रक्खेंगे, यदि बिना सताये हुये भी वह हाथ आये तब भी यह सोचना चाहिये कि हमको उसके लेने का अधिकार भी है या नहीं और दूसरी दशा में इसका हमारे हाथ आना कहां तक सम्भव था, (३) वह किसी ऐसे के यहाँ से तो नहीं आया है जो हमसे कोई काम निकालना चाहता है, (४) जिसके यहाँ से आया है वह कैसा मनुष्य है और उसकी कमाई उचित रीति से है या अनुचित रीति से, है शुद्ध है या अपवित्र, (५) चाहे वह किसी अच्छे ही मनुष्य का दिया हुआ क्यों न हो परन्तु हमने स्वयं उसके लिये कुछ परिश्रम भी किया है या नहीं ।

अच्छे मनुष्यों के यहाँ भोजन का लाभ बहुतों ने वर्णन किया है परन्तु वह भी सन्देह रहित नहीं है । इसलिये इस से बचने ही में कल्याण है । कोई क्यों किसी का आधीन बने ! क्यों न गाढ़े पसीने की कमाई खाये ! परमार्थ में गुरू के अतिरिक्त और किसी से किसी प्रकार की सहायता लेना अधर्म है । तात्पर्य तो यह है कि मनुष्य अपने पाँव आप खड़ा हो, आवश्यकता और सहायता का ध्यान मनुष्य को असलियत से गिरा देता है और वह कहीं का नहीं रहता ।

भिक्षा माँगना भी वैसा ही निषिद्ध है जैसा घूस लेना क्योंकि इसमें भी औरों का संस्कार मिला रहता है । बात स्पष्ट है। जिससे ज वस्तु लोगे उसके लिये अवश्य ही कृतज्ञ होना

पड़ेगा और तुम्हारा सर सदैव नीचा रहेगा । चाहे कितनी ही स्वतन्त्रता की डींग मारी जाये परन्तु जब आँखें दो चार होगी उससे दबना ही पड़ेगा । यदि बाहिरी व्यवहार में अकड़ के कारण न दबोगे तो मन की अन्तरी दशा को क्या करोगे ? वह तो सदैव मलीन और अपवित्र रहेगा । माँगना बुरा ही है चाहे कभी भी हो और किसी से भी हो । यदि कोई साधू भी किसी से माँग कर अपना पेट भरता है तो कभी सम्भव नहीं है कि परमार्थ की दृष्टि से वह पवित्र रह सके । यही कारण है कि सच्चे साधू किसी से भी दान नहीं लेते और कोई न कोई काम करके अपना काम चलाते हैं । आज कल भारत वर्ष में साधुओं की संख्या बहुत बड़ी है परन्तु इनमें कोई विर्ला ही सच्चा साधू निकलेगा । यह गृहस्थियों के सारे हुये हैं । कबीर साहिब की वाणी है—

१–माँगन मरन समान है, मत कोइ माँगे भीख ।
माँगन सों मरनो भलो, यह सतगुरु की सीख ॥ १ ॥
२–मरजाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज ।
परमारथ के कारने, मोहि न आवै लाज ॥ २ ॥
३–माँगन भलो न बाप सों, जो बिधि राखे टेक ।
माँगन हारा पातकी, सदा लजावै भेख ॥ ३ ॥
४–माँगन गये सो मर गये, मरे जो माँगन जाँह ।
उनसे पहिले वह मरे, जो होत कहत हैं नाँह ॥ ४ ॥

परिश्रम की कमाई में बहुत बड़ी बरकत होती है । हम तो इस नियम के पालन का ध्यान रखते हैं । बिरादरी के सम्बन्ध में जब कभी किसी के यहाँ खाना पड़ता है तो हम देखते हैं कि उस दिन मन चंचल हो जाता है और प्रायश्चित्त करने को जी चाहता है । माना इससे हमारी कमी का पता लगता है परन्तु यह सच्ची बात है । इसी लिये हम बार बार कहते हैं कि चाहे दुख उठाओ परन्तु किसी के सामने हाथ न फैलाओ ।

जब हाथ, पाँव, बुद्धि, विचार मिले हुये हैं तो कोई क्यों किसी के आधीन रहे ! क्यों न कोई काम करके कमाये ! आप भी खाये औरों को भी खिलाये। दूसरों से सहायता की आशा क्यों रक्खी जाये ! यदि थोड़ा मिलता है तो थोड़े ही पर सन्तोष रक्खो।

रूखा सूखा खाय के, ठंडा पानी पी।
देख पराई चूपड़ी, क्यों ललचावे जी॥
सब ते भली खीचड़ी, जामे पड़े टक लौन।
चिकनी चुपड़ी खाय कर गला फँसावे कौन॥
सब ते भली मधूकरी भांति भांति को नाज।
दावा काहू को नहीं बिना विलायत राज।

दृष्टान्त (१)-भीष्म पितामह महा भारत के पीछे घायल होकर बाण शय्या पर पड़े हुये थे ! पंच पाण्डव कृष्ण भगवान के साथ उनके दर्शन को आये। साथ में द्रौपदी भी थी। युधिष्ठिर इस राजऋषि से धर्म सम्बन्धी प्रश्न करने लगे जिनके उत्तर महाभारत के शान्ति पर्व में विस्तार के साथ आये हैं। द्रौपदी ने पूछा, "महाराज ! इस समय तो आप धर्म की इतनी बातें बता रहे हैं, उस समय आप का धर्म कहाँ चला गया था जब भरी सभा में दुष्ट दुश्शासन ने मेरी चीर पकड़ कर खींची और मुझ को नङ्गी करने लगा था ? क्षत्रियों का धर्म तो यह है कि वह ऐसी दशा में स्त्रियों की रक्षा करें परन्तु वहाँ सब चुपचाप इतना बड़ा अत्याचार देख रहे थे ! पाण्डव तो जुये में हार गये थे इसलिये बोल नहीं सकते थे परन्तु आप को क्या हो गया था जो आपने इस अधर्म की रोक थाम नहीं की ?" भीष्म पितामह ने उत्तर दिया, "ऐ बेटी !

मैं उस समय दुर्योधन का अन्न खाता था। उस अन्न के प्रभाव ने धर्म संस्कार को दबा दिया था और मैं बेबस था। जो जिसका अन्न खाता है वह उसके आधीन रहता है। वह वैसा ही करेगा जैसा अन्न वाला करता है।"

दृष्टान्त (२)-श्री रामानन्द जी परम संत कबीर साहिब के गुरु थे। एक दिन ध्यान में बैठे, चित्त एकाग्र नहीं था। ध्यान न हो सका। उठ खड़े हुये और चेले से पूछा, "आज भिक्षा कहाँ से लाये हो?" वह बोला, "एक चमार के यहाँ से लाया था।" रामानन्द जी ने क्रोध में आकर शाप दिया "जा! तू चमार होजा।" कहते हैं वह चेला दूसरे जन्म में रैदास हुआ। यह बात सच है या झूँट इसका पता नहीं परन्तु परिणाम बतलाता है कि बुरे अन्न का प्रभाव महात्माओं पर भी पड़ता है।

दृष्टान्त (३)—दो नवयुवक ब्राह्मण थे। इनका बाप दो सौ रुपये छोड़कर मर गया। दोनों ने आधे आधे बाँट लिये और सौ सौ रुपया लेकर अपना अपना काम करने लगे। इनमें एक सज्जन और धर्मात्मा था। दूसरा बड़ा ही धूर्त्त और चलता हुआ था। एक तो आटा दाल नमक लकड़ी इत्यादि बेचने लगा। दूसरे ने अपना रुपया महीने भर में उड़ा दिया और निर्धन बन गया। धर्मात्मा को केवल चार आने रोज़ का लाभ था। इसी से उसका कुटुम्ब पलता था। दूसरे के पास जब कुछ न रहा वह अपने भाई के पास जाकर कहने लगा "मेरे पास एक पैसा भी नहीं रहा, भूकों मरता हूँ। कुछ सहायता कर।" वह बोला, 'बाप के सौ रुपये जो मिले थे क्या हो गये?' उसने उत्तर दिया, 'क्या बताऊँ! यों ही इधर उधर में सब उड़ गये। अब यदि तू सहायता न देगा तो भूकों मर जाऊँगा।' भाई के हृदय में प्रेम उमड़ आया। प्यार के साथ कहने लगा, 'मुझे

केवल चार आने रोज़ मिल जाते हैं। इसी से काम चलाता हूँ। घर में कई खाने वाले हैं। तू अकेला है। यह एक रुपया ले जा। इससे दूध की दुकान कर ले। तेरे लिए बहुत कुछ इसी से मिल रहेगा, परन्तु देखना! बुरी संगत और बेईमानी से बच कर रहना।'

उसने रुपया ले लिया। भाई के सामने ही दुकान किराये पर ली। दूध मोल लेकर बेचने लगा। उस दिन उसे एक ही आना मिला। उसने सोचा एक आने से क्या हो सकता है? इस से तो खाना भी नहीं निकलेगा। दूसरे दिन उसने एक रुपये के दूध में एक लोटा पानी मिला दिया। उस दिन उसे दो आने मिल गये। तीसरे दिन वह दो रुपये का दूध लाया और उसमें चार लोटे पानी मिलाया। आज आठ आने मिले। अब तो उसे कमाने का ढङ्ग आगया, थोड़े ही दिन में दुकान चल निकली धर्मात्मा भाई नित्य उसकी दशा देखा करता था, बोला, "देख भाई! यह अच्छी बात नहीं है।" परन्तु वह कब मानने वाला था। जिसका बुरा होता है, वह तो अपने धर्मात्मा भाई को काठ का उल्लू समझता था। देखते देखते उसकी दुकान बहुत ही चमक गई। सौ दो सौ रुपये भी हाथ आगये। एक सोने का कण्ठा भी बनवा लिया। दूध, दही, मलाई, रबड़ी, खोया, पेड़े, सब कुछ बनाने लगा। भाई ने एक दिन फिर समझाया, "अब तक जो हुआ सो हुआ। दूध में पानी मिलाना छोड़ दे।" इसने बिगड़ कर कहा, "तुम बड़े ही मूर्ख हो। इसी से चार आने रोज़ पाते हो। देखो मैं बहुत जल्द धनवान हुआ जाता हूँ।" वह बेचारा अपना सा मुँह लेकर चला आया।

पास ही उसका गुरू रहता था। उसके पास जाकर कहने लगा, "महाराज! बड़े ही आश्चर्य की बात है! मैं धर्म पर हूँ और मेरी उन्नति नहीं होती। मेरा भाई अधर्म करता है और

वह दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।' महात्मा ने पूछा, 'वह क्या करता है ?' उसने कहा, 'दूध में पानी मिला कर बेचता है।' साधू ने उत्तर दिया, "तू अपनी मूर्खता से उन्नति नहीं करता। तुझे चार आने पर सन्तोष है। यदि बुद्धिमानी और ईमानदारी के साथ काम करे तो तेरी दुकान देखते देखते चमक जाये। उसकी उन्नति जो हो रही है वह अधर्म से नहीं है किन्तु उसके अगले जन्म के शुभ कर्म उदय हुये हैं। इसलिये उन्नति कर रहा है। जब बुरे कर्म उदय होंगे सारा माल असबाब जलकर राख हो जायेगा। तेरे काम में सच्चाई है परन्तु उसका व्यवहार उसे नाश किये बिना न रहेगा।' इसने कहा, 'इस समय तो वह चैन उड़ा रहा है।' साधू बोला, 'कागज़ की नाव कब तक चलेगी ? अन्त भले का भला, अन्त बुरे का बुरा, परन्तु यह तो बता कि अब तक उसने कितने लोटे पानी के मिलाये हैं ?' उसे हिसाब याद था, झट बतला दिया। साधू ने मनुष्य की गहिराई का गड्ढा खुदवाया और उसमें उतने ही लोटे पानी भरवाये जितने उसने बताये थे। फिर और पानी के लोटे उसमें गिन गिन कर डाले और हिसाब करके कहा, 'जब इतने लोटे पानी के पूरे हो जायेंगे तब उस पर आपत्ति आयेगी।'

ब्राह्मण यह सुनकर घर चला आया। अपनी दुकान पर बैठा हुआ नित्य लोटे गिनता रहा। जिस दिन लोटों की गिन्ती पूरी हो गई उसने सोचा, 'आज मेरे भाई पर आपत्ति आयेगी क्योंकि साधू झूट नहीं बोलते।'

वह दिन भर दूध दही रबड़ी बेचता रहा। रात के समय आग बुझाई और बुझी हुई लकड़ियों को लकड़ी की कोठरी में डाल दिया और दुकान बन्द करके सो रहा। सोने का कण्ठा भी सन्दूक़ में रख दिया था। संयोग वश बुझी हुई लकड़ियों में से किसी लकड़ी में कुछ आग रह गई थी जिस पर इसकी दृष्टि नहीं

पड़ी थी। वह तो गहिरी नींद में सो गया। आग धीरे धीरे सुलगती गई। अन्त में सारे घर में आग लग गई। सारा माल असबाब जलकर राख हो गया। बड़ी कठिनाई से उसकी अपनी जान बची। वह देर तक रोता और चिल्लाता रहा।' हाय! मेरा सर्व नाश होगया। कहीं का नहीं रहा।' परन्तु अब रोने धोने से क्या हो सकता था।

भाई ने दिलासा देकर समझाया, 'देख! मैं कहता था तूने नहीं माना। बुराई का परिणाम बुरा होता है। तेरा सारा माल आग ने भस्म कर दिया। वही एक रुपया तेरी कमर में बच रहा जो मैंने दिया था। अब फिर इसी से ईमानदारी और सच्चाई के साथ काम कर। तेरा काम फिर चल जायेगा।'

उसकी आँखें खुलीं। थोड़े ही दिन में वह फिर सँभल गया और दुकान चल निकली।

यह हमारा निज अनुभव भी है। मालिक का धन्यवाद है कि हमने न तो कभी किसी को धोका दिया और न यह बिचार कभी मन में उत्पन्न हुआ। यदि औरों ने हमको धोका देकर हानि भी पहुँचाई तो हम दुखी भी नहीं हुये क्योंकि यह हमारे अगले जन्मों के कर्मों का फल रहा होगा जिसका भोगना आवश्यक था। बहुत से कर्म बिना भोगे हुये नहीं कटते परन्तु इन धोका देने वालों की दशा देखकर समझ गये कि इसका परिणाम बुरा है।

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय॥

हमने ऐसे रिश्वत (घूंस) खाने वालों को देखा है जिन्होंने पहिले पहिल तो अच्छी तरह से माल मारे परन्तु जीवन पर्यन्त नाना प्रकार के दुख भोगते रहे। कहीं बीमारी में हजारों रुपये उड़ गये, कहीं अपनी उन्नति का अवसर खो बैठे। जिस कारबार में उन्हें लाभ

की आशा थी उसी में दीवाला निकल गया। अन्त में हाथ मलते हुये संसार से जाना पड़ा। मनुष्य को चाहिये कि परिश्रम और सच्चाई के साथ गाढ़े पसीने की कमाई करे। चाहे वह ऋणी हो, चाहे दुखी हो, चाहे दिन रात में एक ही बार भोजन मिले परन्तु उसका परिणाम अच्छा होगा। दुख और कष्ट सब पर आते हैं। अवतार, देवता, नबी, रसूल सबको दुख उठाना पड़ा है। दुःख में धैर्य और साहस को न छोड़ना चाहिये और न कभी हराम की कमाई करनी चाहिये। यह दुःख मनुष्य की परीक्षा और भलाई के लिये आते हैं। मनुष्य को चाहियें कि परीक्षा में पूरा उतरने के लिये सदैव तत्पर रहे।

मालिक पर भरोसा रक्खो। वह जब करेगा भला ही करेगा। अपना बिगाड़ने वाला मनुष्य आप होता है। मालिक किसी को नहीं बिगाड़ता।

सेवक सेवा में रहै, अन्त कहुँ नहिं जाय।
दुख सुख सर ऊपर सहै, कहै कबीर समझाय॥

दृष्टान्त (४)—गाढ़े पसीने की कमाई में बरकत होती है सुनो! एक साधू की कथा सुनाते हैं:—

एक साधू गृहस्थ के भेष में रहकर परमार्थ की कमाई किया करता था। लोग उससे द्वेष रखने लगे। एक दुष्ट ने बेचारे को यहाँ तक सताया और तंग किया कि सारे देश में बदनाम कर दिया। साधू ने अपना सब कुछ लुटा दिया और आप दूसरे शहर में जाकर ईंट और गारा का काम करने लगा। इसने और सबको तो अलग कर दिया परन्तु एक श्रद्धालू कहार ने इसका साथ नहीं छोड़ा। वही उसके साथ रह गया। उसे दो चार पैसों से अधिक नहीं मिलता था। दोनों इसी में बसर करते थे। गृहस्थी साधू की तो यह दशा हुई। उधर उस दुष्ट धनवान पर ऐसी आपत्ति आई कि उसका सारा कारबार नष्ट होकर दीवाला निकल गया

और वह भी रोटियों का मुहताज हो गया।

साधू और कहार दोनों आनन्द के साथ रहते थे। कुछ दिनों पीछे इस कहार का कोई मित्र घर जाने लगा। यह प्रचलित बात है कि ऐसे समय में लोग अपने सम्बन्धियों को कुछ न कुछ घर जाने वालों के हाथ भेज देते हैं। कहार ने अपने मालिक से कहा, 'यदि आप कुछ दे दें तो मैं कुछ मोल लेकर अपने लड़के के लिए भेज दूँ।' गृहस्थी साधू ने तीन पैसे दिये और कहा, 'इसके अनार लेकर भेज दे क्योंकि हमारे यहां अनार नहीं होता।' उसने ऐसा ही किया और तीन पैसों के पाँच अनार मोल लेकर दे दिए।

अब सुनिये! जहां का यह कहार रहने वाला था वहां एक महाजन बहुत ही बीमार पड़ा। हकीम ने कहा, 'यदि अनार नहीं मिलते तो आप का बचना महा कठिन है।' बहुत खोज की गई परन्तु वहाँ अनार कहाँ था! बहुत ढूँढने पर वही पांचों अनार उसके यहां आये। उसकी जान बच गई। महाजन ने प्रसन्न होकर अनार के बदले पांच सौ रुपये दे दिये। जब कहार ने अपने मालिक को यह बात सुनाई कि पाँच अनार के बदले मेरे लड़के को पाँच सौ रुपये मिले तो साधू ने हँस कर कहा, 'इनका दाम तो पाँच हज़ार होना चाहिए था क्योंकि मेरे तीन पैसे गाढ़े पसीने की कमाई के थे।'

दृष्टान्त (५) संस्कार प्रत्येक वस्तु में होते हैं। आप किसी का कपड़ा पहिन लीजिये, उसके संस्कार आप में आजायेंगे। किसी के घर में जाइये। उसके घर के संस्कार आप में समा जायेंगे। किसी के पास बैठने का भी यही परिणाम होता है। कपड़ा, लत्ता, घर द्वार, काग़ज़ किताब, मिट्टी पानी इत्यादि सब में संस्कार होते हैं। यह तो साधारण मनुष्य भी समझ सकता है। ऐसे ही अन्न जल में भी संस्कार होते हैं।

कोई शुद्ध चित्त वाला पंडित कथा सुनाया करता था। दक्षिणा ही उसकी जीवन वृत्ति थी परन्तु अन्न जल बड़े बिचार के साथ ग्रहण करता था। एक दिन रोटी खाकर कथा सुनाने गया। बहुत से लोग आये। किसी धनवान की स्त्री भी आई हुई थी। कथा समाप्त होने पर सब लोग चले गये। वह स्त्री भूल से अपनी सोने की माला वहाँ छोड़ गई। पंडित का चित्त डाँवां-डोल हो गया। झट आँख बचाकर माला को जेब में डाल लिया और घर की राह ली। राह में सोचता विचारता जाता था कि मेरा हृदय अशुद्ध क्यों हुआ! मुझको चाहिये था कि उस माला को हाथ तक न लगाता। पंडित बुद्धिमान था। घर पहुँच कर अपने नौकर के हाथ माला तो उस स्त्री के पास भेज दी और अपने घर में पूछने लगा, 'आज खाने की सामिग्री कहां से आई थी?' स्त्री बोली, 'एक सोनार ने सीधा भेजा था।' पंडित ने सोनार के पास जाकर पूछा, 'सच सच बताना! जो तुमने मेरे यहां सीधा भेजा है वह कैसा है?' सोनार ने उत्तर दिया, 'आज एक महाजन सोने का गहना बनवाने आया था। उसमें से कुछ सोना मैंने चुरा लिया और खाने पीने की सामग्री मँगाई। थोड़ी सी आपके यहां भेजी और घर में रक्खी है।'

पंडित ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। घर पर आकर प्रायश्चित्त किया और रात भर गायत्री मन्त्र जपता रहा।

तुम दृढ़ विश्वास रक्खो। आहार तो तुम्हें अवश्य ही मिलेगा परन्तु चाहिये यह कि अपनी रोटी आप कमाओ जिससे लोक परलोक का कल्याण हो। यदि यह बात नहीं है तो परमार्थ का ध्यान हृदय से भुला दो। यह केवल उनके लिए है जो अपने पसीने की कमाई करते हैं। यदि मन को अशुद्ध और अपवित्र बनाते जा रहे हो तो वह अँधेरा ही रहेगा। उसमें परमार्थ का प्रकाश कैसे होगा? हराम की रोटी खाना और साथ ही परमार्थ

का ध्यान रखना बहुत ही बड़ी भूल है।

साखी

जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय॥

सत्संग

साखी

एक घड़ी आधी घड़ी, और आधी की आध।
कबीर सङ्गत साध की, कटैं कोट अपराध॥
संगत कीजै संत की, जां का पूरा मन।
बेनसीब के देत हैं, राम सरीखा धन॥

सत्सङ्ग क्या है? सत् का सङ्ग सत्संग है। सत् क्या है? सुनो, सत् नाम है सत्य का, साधु का, विद्वान् का, उत्तम का, गुण का, नित्य का, मान्य का, ब्रह्म का, गुरू का, सच का, अच्छे का, श्रेष्ठ का। इसके और भी बहुत से अर्थ हैं। यदि उन सब को जानना हो तो कोष देखो। वास्तव में विस्तार रूप से सत्संग का अर्थ बहुत कुछ है और इस शब्द का प्रयोग उसी अर्थ में किया भी जाता है परन्तु साधारण मनुष्यों के समझाने बुझाने के लिए असाधारण ही अर्थ की व्याख्या की जायेगी। साधारण और असाधारण एक दूसरे की दृष्टि से हैं। दृष्टि सृष्टि का सिद्धान्त तुम समझते होगे। यहां एक एक परमाणु में हजारों चांद, सूर्य और तारे चमक रहे हैं। एक बूँद के भीतर करोड़ों समुद्र लहराते हैं। सूर्य में अनगिनत परमाणु, और किरणें हैं। समुद्र में असंख्य बुँद और लहरें हैं। यह तो तुम भली भांति

जानते हो। यदि इसे जानते हो और समुद्र में असंख्य बूँदों के होने का पूर्ण रूप से निश्चय हो गया है तो मालिक के लिये अपने ऊपर दया करो। मन के परदों को फाड़ो और बुन्द की तह में अनगिनत समुद्रों को लहराते हुए भी देखो। कुछ सोचो विचारो, तब पता लगे। थोड़ा सा परिश्रम करो परदा आप ही आप आंखों से उठ जायेगा और तुम चकित हो जाओगे।

यदि तुम इसे नहीं मानते तो न मानो। हम सत् को गुरू कहते हैं। व्यापक, सर्व दर्शी, पूर्ण सर्वश्रेष्ठ, अजर, अमर, अविनाशी केवल गुरू का आत्म स्वरूप है और वह सत् है। उसकी सेवा, उसका संग, समागम, मेल, मिलाप, दर्शन, सुमिरन भजन, ध्यान सत्सङ्ग है। गुरु ही सर्वश्रेष्ठ पूर्ण और पूर्णधनी हैं। गुरु न होते तो कौन ईश्वर को जानता ? इसलिये गुरु ही ईश्वर के पैदा करने वाले हैं। तुम्हें आश्चर्य होगा कि हम क्या कह रहे हैं ! क्या यह बावले पन और दीवानेपन की बात है ? नहीं ! नहीं !! यही सच्चाई है। कहां भूले हो ? गुरू न होते तो ईश्वर का सच्चा ज्ञान किसे होता ? जिसने हमारे हृदय में ईश्वर के भाव और विचार को उत्पन्न किया जिसने ईश्वर का ध्यान दिलाया, जिसने ईश्वर को लखाया और उसका ज्ञान प्रदान किया क्या वह उसका पैदा करने वाला नहीं हुआ ? हम इधर उधर न बहकते हैं न बहकाते हैं। जो बात लोग परदा दे दे कर कहते हैं हम खोल खोल कर सुना देते हैं ऐ सत् के जिज्ञासुओ ! सुनो, **सतपुरुष** की वाणी है:—

१—गुरू गुरू मैं हिरदय धरती।
गुरू आरत की सामां करती ॥१॥
२—गुरू मेरे पूरन पुर्ष विधाता।
गुरु चरनन पर मन मेरा राता ॥२॥

३–गुरु हैं अगम अपार अनामी ।
गुरू बिन दूसर और न जानी ॥ ३ ॥
४–नहिं ब्रह्मा नहिं विष्णु, महेशा ।
नहिं ईश्वर परमेश्वर शेषा ॥ ४ ॥
५–सब को करूं प्रणाम जोड़कर ।
पर कोई नहिं सतगुरु सम सर ॥ ५ ॥
६–सतगुरु कृपा सबन को जाना ।
बिन सतगुरु कैसे पहिचाना ॥ ६ ॥
७–सत गुर भेद दिया, यक यक का ॥
तब जाना इन सब का ठेका ॥ ७ ॥
८–सतगुरु सब का भेद बखाने ।
अब किस को गुरु से बढ़ जाने ॥ ८ ॥
९–गुरु ने सब का पद दरसाई ।
जस जस जिन की गति तस गाई ॥ ९ ॥
१०–ताते सतगुरु सब के कर्त्ता ।
सतगुरु ही है सब के हर्त्ता ॥ १० ॥
११–याते सतगुरु का पद भारी ।
सतगुर सम नहिं कोई बिचारी ॥ ११ ॥
१२–जब जिव सरन गुरू की आवे ।
कर्म धर्म और भर्म नसावे ॥ १२ ॥
१३–जो गुरु मारग देहिं बताई ।
सोइ निज कर्म धर्म हुआ भाई ॥ १३ ॥
१४–ताते प्रथम गुरु को खोजो ।
शब्द बतावें सो गुरु सोधो ॥ १४ ॥
१५–गुरु की कीजै हरदम पूजा ।
गुरु समान कोइ देव न दूजा ॥ १५ ॥

दोहा

क्या हिन्दू क्या मुस्लमान क्या ईसाई जैन।
गुरु भक्ति पूरन बिना, कोई न पावे चैन॥

कहने वाले कह गये हैं :—

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु, गुरु देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात परब्रह्मः, तस्मै श्री गुरवेनमः॥

परम सन्त कबीर साहिब की वाणी है:—

१–कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे तो ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥ १॥
२–कबीर हरि के रूठते, गुरु के शरने जाय।
कहैं कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होंय सहाय॥ २॥
३–गुरु हैं बड़े गोविन्द से, में देख विचार।
हरि सिरजे ते वार है, गुरु सिरजे ते पार॥ ३॥
४–गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किस के लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोविन्द दिया लखाय॥ ४॥
५–बंदौं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुञ्ज जासु वचन रवि कर निकर॥ ५॥

मुसलसान सूफियों ने भी ऐसा ही कहा है।

जैनियों के तीर्थङ्कर और ईसाइयों के मसीह क्या हैं ?

गुरु ही के रूप तो हैं परन्तु लोग भ्रम और भ्रान्ति में बुरी तरह से फँसे हुए हैं। सचचाई को छुपा कर, परदा दे दे कर सच्ची बात के कहने में लोग साहस से काम नहीं लेते। परदे की बात छुपाई जा सकती है परन्तु सच को कोई कब तक छुपायेगा! हमने पढ़ा लिखा और सत्संग किया। अब सच्चाई की समझ आई। जिसका जी चाहे हम को कोसे और बुरा भला कहे परन्तु

हम तो अब खुले शब्दों में स्पष्ट रूप से कहेंगे। परदे के साथ बात करने ने हानि पहुँचाई और बड़ा ही हर्ज किया। जो सच्ची समझ रखते हैं सच्चा समझेंगे। जो धर्म के बन्धनों में जकड़े हुए हैं वह भ्रम में फँसे रहें।

साधू ऐसा चाहिये, साँची कहै बनाय।
कै टूटे और कै जुड़े, बिन कहे भर्म न जाय॥

गुरु हड्डी चमड़े और माँस का मनुष्य नहीं है। वह (Ideal) और आदर्श है और इसी का संग सत्संग कहलाता है। धन्य हैं वे लोग जिन को ऐसा सत्संग प्राप्त हो गया क्यों कि अब उन को किसी प्रकार का भ्रम न रहेगा। वह अपना काम बना लेंगे और साथ ही साथ औरों का भी उद्धार करेंगे।

गुरु के संग ही को सच्चे अर्थ में सत्संग कहते हैं। बिना इसके ज्ञान और सत की समझ नहीं आती। ज्ञानी, ध्यानी, योगी, तपसी सब को सत्संग की आवश्यकता है।

गोस्वामी तुलसीदास जी की वाणी है :—

शठ सुधरहिं सत् संगत पाई।
पारस परस कुधातु सोहाई॥
सत् संगत मुद मंगल मूला।
सोइ फल सिध सब साधन फूला।

क्या प्रमाण है कि इससे यह लाभ होते हैं ? आप फिर अपनी रामायण में यों कहते हैं:—

बाल्मीक नारद घटयोनी।
निज निज मुखन, कही निज होनी॥

अर्थ—बाल्मीक लुटेरे डाकू को क्षण मात्र के गुरु के सत्संग से ऋषि की पदवी मिली। नारद दासी पुत्र होते हुये भक्तों में सर्व श्रेष्ठ माने गये। अगस्त ऋषि ने सत्संग का फल यह पाया कि तत्व को समझ कर समुद्र को सोख लिया यह मैं नहीं कहता

किन्तु यह महात्मा अपनी अपनी जीवनी आप अपने मुख से कह गये हैं।

साध संग की महिमा कौन वर्णन कर सकता है ? आप का कथन है:—

[1]बिधि [2]हरि [3]हर कवि [4]कोविद [5]बानी।
कहत साधु महिमा [6]सकुचानी॥
सो [7]मोसन कहि जात न कैसे।
शाक[8] बणिक [9]मणि गुण गण जैसे॥

अर्थ—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कवि, पंडित और सरस्वती साधु महिमा वर्णन करते हुये लजाते हैं, इन्हें साहस नहीं है कि इनकी बड़ाई कह सकें। फिर मैं क्या कहूँ ? कुंजडा मोती और जवाहिर का दाम क्या लगा सकता है ?

हम तो खुल्लम खुल्ला बिना परदा रक्खे हुये स्पष्ट शब्दों में कहते हैं और जो लोग कह गये हैं उनकी वाणी भी सुनो ! परम सन्त **कबीर साहिब** कहते हैं:—

१–[10]रवि को तेज घटे नहीं, जो [11]घन जुड़े [12]घमंड।
साध बचन पलटै नहीं, पलट जाय ब्रह्मण्ड॥ १॥
२–मन मेरा पंछी भया, उड़कर चला अकास।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहिब सन्तन पास॥ २॥
३–एक घड़ी आधी घड़ी, और आधी की आध।
कबीर संगत साध की, कटैं कोटि अपराध॥ ३॥

सत्संग की महिमा अपार है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यदि आग के पास जाने से गर्मी और पानी के पास बैठने

नोट—१=ब्रह्मा। २=विष्णु। ३=शिव। ४=पंडित। ५=सरस्वती। ६=लज्जित हुये। ७=मुझ से। ८=साग बेचने वाला। ९=जवाहिर १०=सूर्य। ११=बादल। १२=बहुत।

से सर्दी मिलती है तो गुरू के सत्संग का क्यों न प्रभाव होगा ! यह सोचने समझने की बात है।

१–कबीर सङ्गत साध की, ज्यों गन्धी की बास।
जो कुछ गन्धी दे नहीं, तो भी बास सुबास ॥ १ ॥

२–मथुरा काशी द्वारका, हरदुआर जगन्नाथ।
साधसङ्ग हरि भजन बिन, कुछ नहिं आवै हाथ ॥ २ ॥

३–कबीर सङ्गत साध की, निष्फल कभी न होय।
चन्दन मिल चन्दन भई, नीम न कहसी सोय ॥ ३ ॥

४–पारस में और सन्त में, यही अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करै, यह करलें आप समान ॥ ४ ॥

५–राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू सङ्ग में, सो बैकुण्ठ न होय ॥ ५ ॥

६–तीरथ गये तो एक फल, सन्त मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहैं कबीर विचार ॥ ६ ॥

दृष्टान्त (१)—**विश्वामित्र** और **वशिष्ठ** दोनों ऋषियों में मतभेद था। विश्वामित्र पराक्रम को प्रधान मानते थे और कहा करते थे कि इससे सब कुछ हो सकता है। वशिष्ठ जी का पक्ष था कि सत्सङ्ग की महिमा बहुत बड़ी है। पराक्रम इसके सामने कुछ भी नहीं है। दोनों में झगड़ा हो गया। दोनों ही अपने अपने पक्ष में प्रमाण देने लगे। इनके झगड़े को कौन निबेड़े ? जब शास्त्रार्थ होते होते देर हो गई तब यह सम्मति हुई कि किसी तीसरे से निर्णय कराना चाहिये। दोनों ने ब्रह्मा के पास जाकर अपने अपने पक्ष कह सुनाये। ब्रह्मा बोले, "मैं मध्यस्थ नहीं हो सकता क्योंकि मैं कर्म का अधिष्ठाता हूँ और कर्म ही मेरा आदर्श है। मैं जो कुछ कहूँगा वह एक के विरुद्ध होगा। तुम लोग शिवजी के पास जाओ।" बमभोले नाथ कैलाश की चोटी पर मृग आसन बिछाये हुये बैठे थे। इन लोगों की बात सुनकर शिव भगवान्

हँसे, "हमारे यहाँ कोई न्यायालय नहीं है। ज्ञान में न्याय कैसा! ज्ञान समदर्शी है। तुम विष्णु के पास जाओ। वह नेता हैं और मर्यादा के चलाने वाले हैं।" दोनों ने वहाँ से बैकुण्ठ की राह ली। विष्णु लक्ष्मी जी के साथ विलास कर रहे थे। उन्होंने दोनों का स्वागत किया और आदर सत्कार के साथ बिठाया। विष्णु भगवान् ने जानते हुये भी पूछा, "कहिये आप लोगों ने कैसे दर्शन दिया?" वशिष्ठ ने हाथ जोड़ कर कहा, 'हम दोनों सतसङ्ग और पराक्रम की महिमा पर झगड़ रहे हैं। आप बतलाइये, दोनों में से कौन बड़ा है?' विष्णु जी मुसकराये, 'मैं क्या कहूँ! मेरे यहाँ स्थित का नियम बरता जाता है। पराक्रम और सतसंग दोनों की मैं रक्षा करता हूँ। तुम दोनों शेषनाग के पास जाओ। वह निर्णय कर देंगे। फिर और कहीं जाने की आवश्यकता न रहेगी।' दोनों वहाँ से विदा होकर पाताल देश के तले जा पहुँचे। शेष जी अपने हज़ार मुँह से भगवान की स्तुति कर रहे थे। इन्हें देखकर बोले, 'क्या झगड़ा है?' दोनों ने अपना पक्ष सुनाया। शेष नाग ने कहा, 'तुम देखते हो मेरे सर पर कितना बड़ा बोझ है। यदि तुम में से कोई भी अपने पराक्रम और सतसंग के बल और प्रताप का सहारा लेकर इस बोझ को क्षण मात्र के लिये भी उठा लें तो मुझे सोचने समझने का अवसर मिले।' विश्वामित्र झट पराक्रम का बल लगा कर पृथ्वी को कन्धे पर उठाने लगे। कहना सहज परन्तु करना महा कठिन है, घबराकर चिल्ला उठे, 'महाराज! यह बोझ मुझसे नहीं उठने का।' तब शेषनाग ने वशिष्ठ की ओर उङ्गली उठाई। इन्होंने कहा, 'यदि मैंने सतसंग किया है तो उसके क्षण मात्र के फल के प्रभाव से यह बोझ उठा लूँगा।' ऐसा ही हुआ। शेषनाग बोले, 'देखो विश्वामित्र! अब निर्णय हो गया। कहो, क्या कहते हो?' वह एक दम चुप हो गये और दोनों नमस्कार करके वहाँ से चल दिये।

महात्मा तुलसीदास जी की वाणी है:-

आठ स्वर्ग उपवर्ग सुख धरिये तुला[१] इक अङ्ग।
तुलै न [२]ताहि [३]सकल [४]मिलि, जो सुख [५]लव सत्संग॥

अर्थ—आठ स्वर्ग और उपवर्ग का सुख एक ओर रखिये और क्षण मात्र के सत्संग का सुख एक ओर रखिये परन्तु तराजू का पल्ला सत्संग ही की ओर बराबर झुका रहेगा। कोई सुख सत्संग के सुख की बराबरी नहीं कर सकता।

जिस इन्द्रिय दमन की महिमा गाई जाती है उसका प्रदान करने वाला सत्संग ही है। सत्सङ्ग में आ जाने पर जो भाव उत्पन्न होते हैं वह निचले, बुरे और विषम सम्बन्धी नहीं होते किन्तु आत्मिक होते हैं। एक बार जिसने गुरु का सत्सङ्ग कर लिया और उनका रंग कुछ भी चढ़ गया तो यदि उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े भी किये जायें तब भी वह कुछ चिन्ता और शोक न करेगा। वह मालिक की मौज समझ कर प्रसन्न चित्त शान्त और दृढ़ रहेगा। जिनको सत्सङ्ग प्राप्त नहीं हुआ वह गेंद की तरह इधर से उधर ढुलकते रहते हैं। जिसने सत्सङ्ग द्वारा साक्षात्कार कर लिया वह अनुभव की दृष्टि से सार वस्तु को देखता है। उसमें अब भ्रम और भ्रान्ति कहाँ?

दृष्टान्त (२)—एक ब्राह्मण घराना बड़ा ही संसारी और दुनियादार था। रात दिन संसार का व्यवहार! लड़कों को पढ़ाया जाता था—'पढ़ो पूत जो हाँड़ी चढ़ै।' साथ ही साथ उनको यह भी शिक्षा दी जाती थी 'जहाँ कहीं सत्सङ्ग हो वहाँ भूलकर भी नहीं जाना और न साधुओं के वचन सुनना यदि संयोग वश कहीं परमार्थ की बात चीत हो तो कानों में उँगली दे लेना और हाँ से भाग निकलना।'

संयोग वश वहां उस गांव में एक साधू ने आकर डेरा जमाया। झुँड के झुँड लोग उसकी बात सुनने के लिए आने लगे। कथा कीर्त्तन होने लगा। एक कथा हो रही थी। महात्मा जी दैवी सृष्टि का वर्णन कर रहे थे। बातों के सिलसिले में वह बोल उठे कि देवताओं की छाया नहीं होती क्योंकि उनका शरीर सूक्ष्म होता है। यह बात सच थी या झूठ इससे प्रयोजन नहीं। उस ब्राह्मण घराने का एक लड़का उधर से जा रहा था। यह बात उसके कान में पड़ गई। जब उसे पता लगा कि यह सत्सङ्ग है वह कान में उँगली देकर वहां से भाग निकला।

बात आई और गई परन्तु लड़के के हृदय में उसका संस्कार जम गया। वह कैसे मिट सकता है! और फिर सच्चे साधु की बात! अनुभव की बात हृदय में तीर की तरह लगती है। हजार कोई उसको रोके परन्तु वह हृदय में जगह किए बिना नहीं रहती। लड़का अपने घर चला आया। यह घराना बड़ा ही धनवान था। एक दिन रात के समय उसके यहां काली रूप धारण करके एक चोर आया। भयानक और डरावना स्वांग देखकर सब डरके मारे दबक रहे। किसी को भी उसका सामना करने का साहस नहीं हुआ। कम समझ लोग ऐसे दृश्य से घबरा जाते हैं। जिस लड़के ने महात्मा का वचन सुना था समय पाकर वह वचन उसके हृदय में फुरा। दीपक जल रहा था। उसके प्रकाश में बनावटी काली की छाया दिखलाई दी। फिर क्या था! झट उसने डन्डा उठाया और लगा चोर को तड़ातड़ और धड़ाधड़ मारने! अन्त में उसे अपने मुँह से कहना पड़ा कि वह काली नहीं है किन्तु चोर है और चोरी करने आया है। घर के लोग जो कोने में छुपे बैठे थे बात सुन कर आगये। धर पकड़ हुई। सबने मिल कर चोर को अच्छी तरह से मारा पीटा यहां तक कि उसने शपथ खाई कि अब यह कर्म कभी न करूँगा।

अब घर के सारे लोग इस लड़के से पूछने लगे कि तूने कैसे जाना कि यह चोर है और देवता नहीं है। वह बोला, 'एक दिन मैं महात्मा के सत्सङ्ग की ओर से जा निकला वहां साधू जी कह रहे थे कि देवताओं की छाया नहीं होती। इतना सुनते ही मैं कान में उँगली देकर भाग आया परन्तु बात मन में गढ़ गई। जब मैंने दीपक के प्रकाश में उसकी छाया देखी, समझ गया कि यह देवता नहीं है किन्तु चोर है।'

सब चकित होगये। कुछ भी हो परन्तु ब्राह्मण थे। ब्राह्मण पने का संस्कार कहाँ जाये! सोचने लगे कि यदि सत्सङ्ग की एक बात सुन लेने से यह प्रत्यक्ष लाभ हुआ कि माल असबाब लुटने से बच गया तो फिर यदि नित्य सत्सङ्ग किया जायगा तो उसका कितना कुछ लाभ होगा! यह सोचकर घर के सारे प्राणी उस साधू के सत्सङ्ग में आकर परमार्थी बन गये।

साखी

१–सत्सँग से सुख ऊपजे, सत्सँग से दुख जाय।
कहें कबी तहाँ जाइये, साध संग जहाँ पाय॥ १॥
२–कबीर संगत साध की, साहिब आवें याद।
लेखे की सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद॥ २॥
३–साध मिले साहिब मिले, रही न मन में टेक।
मनसा वाचा कर्मना, साधू साहिब एक॥ ३॥

दृष्टान्त (३)—एक चोर था जो सदैव चोरी किया करता था। उसके पकड़ने के लिए वारंट जारी था। राजकर्मचारी उसकी खोज में रहा करते थे परन्तु वह ऐसा चतुर था कि पकड़ाई नहीं देता था। एक दिन यह चोर किसी महात्मा के सत्संग में चोरी करने के लिए जा बैठा। वहाँ यह कथा हो रही थी:—"जो मनुष्य किसी

का माल चुराता है वह उसके पाप का भागी होता है और जो दुख, शोक और आह की धारें उसके हृदय से निकलती हैं वह चोर के मन में समाकर उसको नित्य ही चंचल पापी और मलीन बनातीं हैं। जो एक बार भी चोरी करेगा वह चोरी के समस्त विचारों का भण्डार हो जायेगा। उस पर चोरी का गहिरा रंग दिनों दिन चढ़ता जायेगा और उस का उद्धार बड़ी कठिनाइयों से होगा। वह जन्म जन्म दुख और कष्ट भोगता रहेगा।" चोर ने यह बात सुनी। उस के हृदय में आग लग गई और महात्मा के चरणों पर गिरकर चेला बनाने की प्रार्थना करने लगा। महात्मा जी बोले, यदि तू प्रतिज्ञा करे कि कभी झूठ न बोलेगा और जिसका माल लिया है उसे लौटा देगा तब मैं तुझे शिष्य बनाऊँगा।" चोर ने यह बात मान ली और साधू हो गया। उसने सब का माल लौटा दिया। एक दिन जब वो सत्संग में बैठा था उस देश का राजा भी वहाँ आया हुआ था। पुलिस ताक में लगी हुई थी। राजा ने उस से पूछा, "तू कौन है?" इसने उत्तर दिया, "अब तो मैं साधू हूँ। पहिले चोरी किया करता था। सत्संग के प्रभाव से सब का माल लौटा दिया है। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मुझ को पकड़ लो। मैं अपने कर्म्म का फल भोगने के लिये तैयार हूँ।" राजा को इसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ परन्तु पता लगाने से वह चोर ही निकला। अन्त में राजा ने उसका अपराध क्षमा कर दिया। फिर उस चोर का जीवन बदल गया और वह सचमुच साधू ही हो गया।

यह सत्संग का प्रताप है। गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज की वाणी है :—

[1]धूम हु तजै [2]सहज करुआई।
[3]अगर प्रसंग सुगन्ध सोहाई॥

नोट—१= धुआं। २=स्वाभाविक, प्राकृतिक। ३=एक सुगन्ध मय लकड़ी।

अर्थ—धुआँ कैसा कडुआ होता है ? उसके लगते ही आँख और नाक से पानी गिरने लगता है परन्तु जब अगर की लकड़ी के जलने से उसकी सुगन्धि धुयें के साथ मिल जाती है तो लोगों को वह आनन्ददायक और सुखदायक प्रतीत होता है

हानि कुसंग सुसंगत [४]लाहू ।
लोकहु वेद विदित सब काहू ॥
गगन चढ़ै [५]रज पवन प्रसंगा ।
कीचहि मिलै नीच जल संगा ॥

अर्थ—कुसंग से हानि होती है और सत्संग में लाभ है। लोक और वेद में यह बात सब पर विदित है। नीचे रहने वाली धूलि वायु के साथ आकाश पर चढ़ जाती है ! परन्तु बरसने वाले पानी के साथ वही नीचे गिर कीचड़ हो जाती है।

और भी सुनियेः—

[६]जलचर थलचर[७] नभचर[८] नाना
जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई ।
जो जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जाने सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहु वेद न आन उपाऊ ।

अर्थ—पानी के रहने वाले जीव जन्तु, पृथ्वी पर विचरने वाले जीव, आकाश के उड़ने वाले अनेक प्रकार के पक्षी, इनके अतिरिक्त और भी संसार में जो जड़ और चैतन्य हैं उन में से बुद्धि, सुकीर्त्ति, उत्तम अवस्था और भलाई इत्यादि जिसको जहाँ जिस युक्ति से मिली है वह केवल सतसंग का फल है। लोक और वेद में इसके अतिरिक्त और कोई दूसरी युक्ति नहीं है।

४=लाभ। ५=मिट्टी ६=जल के रहने वाले। ७=पृथ्वी के रहने वाले। ८=आकाश के रहने वाले।

मुक्ति का अधिकार

लाखों ही मनुष्य कर्म धर्म करते हैं। लाखों ही जप तप ही में जीवन व्यतीत कर देते हैं। कितने पूजा पाठ में रात दिन लगे रहते हैं। तीर्थ व्रत करने वालों का तो ठिकाना ही नहीं है। क्या यह सब के सब मुक्ति के अधिकारी हैं ? जी नहीं ! आप भूल कर भी ऐसा न सोचियेगा।

क्यों ? क्या इनका कर्म निष्फल जायेगा ? नहीं कर्म का फल तो अवश्य ही मिलेगा।

यदि कर्म का फल मिलता है तो इनको मुक्ति अवश्य ही मिलनी चाहिये।

परन्तु इसका क्या प्रमाण है कि मुक्ति ही के लिए कर्म धर्म करते हैं।

देखने में तो ऐसा ही प्रतीत होता है। यह लोग अन समझ तो हैं नहीं। इनमें बुद्धि, विचार और समझ बूझ है। इनका काम विवेक के साथ होता है।

नहीं ! यह बात नहीं है। इनके अनेक भाव हैं—

(१) यह लोग बड़ाई के लिए कर्म धर्म करते हैं।

(२) इनका काम दिखावे के लिए होता है जिससे जो लोग देखें इनको अच्छा समझें।

(३) लोक लाज के भय से यह डण्ड कमण्डल ग्रहण किये हुए हैं।

(४) इनको अपने इष्ट पर दृढ़ विश्वास नहीं है।

(५) बहुतों ने धर्म को भी जीविका बना रक्खा है।

(६) बहुत से लोग सैर सपाटे के लिये तीर्थ यात्रा करते हैं।

(७) स्वाभाविक भी नित्य नियम का पालन होता है। इत्यादि इत्यादि.....

जो जिस भाव से काम करता है उसको वैसा फल मिलता है। इनमें ऐसे लोग कम हैं, जो मुमुक्षु हों और मुक्ति के लिए काम करते हों।

कोई दृष्टान्त दीजिये तब यह बात समझ में आये।

अच्छा! सुनियेः—

दृष्टान्त (१)—कुम्भ का मेला था। लाखों मनुष्य हरद्वार नहाने गए हुए थे। गङ्गा के तट पर बहुत भीड़ भाड़ थी **शिव भगवान पार्वती** को साथ लेकर कौतुक देखने आये। पार्वती सीधी साधी और भोली भाली स्त्री! शिव जी से कहने लगीं, 'क्या यह सब के सब मुक्त हो जायेंगे?' शिव जी बोले, "कौन ऐसा कहता है?" पार्वती जी ने कहा, 'यह श्री गङ्गा जी के भक्त हैं गङ्गा में स्नान करने से इनके पाप कट जायेंगे और मुक्ति गति को प्राप्त हो जायेंगे।' शिव भगवान मुस्कारायेः—

१—तीरथ व्रत कर जग मुआ, ठण्डे पानी नहाय।
सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥१॥

२—तीरथ चाले दो जना, चित चंचल मन चोर।
एको पाप न ऊतरा, लाये दस मन और ॥२॥

३—न्हाये धोये क्या हुआ! जो मन में मैल समाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥३॥

४—कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करै धाम।
जब लग साध न सेवई, तब लग काँचा काम ॥४॥

ऐ पार्वती! इन सब में विश्वास और श्रद्धा नहीं है। कोई विरला विश्वासी और श्रद्धालू होता है। पार्वती जी बोलीं, "जगतपति! मेरी समझ में नहीं आता कि यह लोग बिना श्रद्धा भाव के यहाँ आये होंगे।" शिव जी ने उत्तर दिया, "परीक्षा करलो! मैं मृतक बन जाता हूं। तुम इन लोगों से कहो कि जिसने कभी पाप न किया हो वह मेरे पति का अन्तिम संस्कार करे।"

पार्वती जी ने मान लिया और सड़क पर शव (लाश) को रखकर रोने लगीं। लोगों ने देखा कि एक रूपवती स्त्री अपने बूढ़े पति के लोथ को लिए हुये विलाप कर रही है। अनगिनत मनुष्य टूट पड़े और समझाने लगे, 'माई! जो होना था हो गया। अब रोना पीटना व्यर्थ है। तू आज्ञा दे तो हम दाह कर्म कर दें।" पार्वती जी ने कहा, "सुनो! मेरे पति को केवल वह मनुष्य हाथ लगाये जिसने कभी पाप कर्म न किया हो।" यह सुनना था कि एक एक करके लोग खसक गये। भीड़ छट गई। जो लोग देखने आये थे पार्वतीजी का प्रण सुनकर हट जाते थे। थोड़ा सा और दिन रह गया था। वह वैसे ही बैठी रहीं। अन्त में एक नवयुवक उधर आ निकला। उसने कहा, 'माई मुझे आज्ञा दे कि मैं इनका मृतक संस्कार कर दूँ।" "माई बोली, "हाँ बेटे! मैं भी तो यही चाहती हूं परन्तु मेरा प्रण यह है कि इस शव को केवल वही हाथ लगाये जिसमें पाप न हो।" इसने पूछा, "बस यही बात है?" पार्वती ने कहा, "हाँ!" यह हँसा, "यह कौन सी कठिन बात है। यह कहकर गंगा की बहती हुई धारा में कूद पड़ा—

गङ्गे! गङ्गे! शुद्ध तरङ्गे! तू अमृत की धारा।
पाप काट अपराध छुड़ावै, खोलै मुक्ति दुआरा॥

वह डुबकी मारकर आया और कहने लगा, "ले माई! मैं पापी नहीं हूँ! अब मुझे आज्ञा दे कि मैं दाह कर्म दिन डूबने के पहिले ही कर दूँ।" उसी समय शिव भगवान उठ खड़े हुये। दोनों ने उस युवक के सर पर हाथ रक्खा और आशीर्वाद देकर कहा, "इन करोड़ों मनुष्यों में एक केवल तू ही ऐसा मनुष्य है जिस को गंगा की पवित्रता पर विश्वास है। तू निस्सन्देह मुक्त जीव है। फिर भोलानाथ पार्वती जी से बोले, "देखा! लाखों और करोड़ों की भीड़ में एक यही नवयुवक मिला जो विश्वास वाला और श्रद्धालू है।" पार्वती जी चुप होगईं।

दृष्टान्त (२)—बनारस में स्वामी शङ्कराचार्य्य का मठ गंगा के दूसरे किनारे पर था और इनके शिष्य इस किनारे पर थे। गंगा बढ़ी हुई थी आप ने शिष्यों को पुकारा, "मेरी धोती दे जाओ।" चेले बगल झांकने लगे। बढ़ी हुई गंगा में कौन जान दे! एक एक करके सब ने इन्कार कर दिया। केवल एक चेला रह गया। उसने गुरु की धोती को सर से बांध लिया और साथियों से कहा, "जब हम गुरु की अपार दया से भवसागर को पार कर जाते हैं तो यह नदी उसके सामने क्या वस्तु है? गुरु यदि उचित समझेंगे आप रक्षा करेंगे।" यह कहा और धम से गंगा में कूद पड़ा। देखते देखते दूसरे किनारे पर जा पहुंचा! पुस्तकों में लिखा है कि गंगा जी उसके पाँव के तले पद्म अर्थात् कँवल के पत्ते बिछाती गईं और इस लिए शङ्कराचार्य्य ने उनका नाम पद्मपाद रक्खा। यह तो कथा है परन्तु सच्ची बात यह है कि पद्मपाद जी गुरु निष्ठ थे

गुरु समरथ सर पर खड़े, काह कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्ध सेवा करें, मुक्ति न छाँड़े पास॥
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अन्त तिहुँ काल।
पलक एक में प्रगट ह्वै, छिन में करूँ निहाल॥
गुरु को सर पर राखिये, चलिये आज्ञा माँह।
कहैं कबीर ता दास को, तीन लोक भय नाँह॥

जो लोग दिखावे की भक्ति करते हैं उनको मुक्ति क्या मिलेगी? जैसा भाव वैसा फल।

सबै जगत की रीत, प्रीत कछु हरि सों नाहीं।
जिन की मति है भंग, भर्म के संग रहाहीं॥
कहै पाँप इनका संग तज, जिन प्रभु जाना दूर।
मूरख मर्म न जानहीं, सर्व रहा भरपूर॥

साखी

जब लग सुरत निरत नहिं थीरम, तब लग ना परतीत।
कहै पाँप मैं ताहि न परसूँ, जाके जगत की रीत॥

—❀☺❀—

एक दृष्टान्त तो यह हुआ जिससे पता लगता है कि मुक्ति के अधिकारी बहुत ही कम लोग हैं। साधारण मनुष्यों की पूजा पाठ पर न जाओ। वह तो इसी संसार को सब कुछ समझ रहे हैं। इससे अलग नहीं होना चाहते इसके दृष्टान्त को भी सुनो:-

दृष्टान्त (३)—नारद को एक बार संसारियों की दुर्दशा देखकर दया आई। सोचने लगे, "क्या ही अच्छा होता यदि यह सब बैकुण्ठ को जाते।" घूमते फिरते आप बैकुण्ठ धाम में पहुँचे देखा कि सारा बैकुण्ठ उजाड़ पड़ा हुआ है। आपने विष्णु भगवान से कहा, "बड़े ही शोक की बात है कि बैकुण्ठ इस प्रकार सूना पड़ा रहे!" वह बोले, "मैं क्या करूँ? कोई यहाँ आना ही नहीं चाहता।" नारद जी हँसे, कोई न कोई बात अवश्य है।"

"यहाँ तो सुख ही सुख है। दुख का नाम भी नहीं है। यदि संसारी जीव यहाँ आ जाते तो बड़े सुखी होते।" विष्णु भगवान ने कहा, "बात कोई भी नहीं है। यहाँ आने की किसी को इच्छा ही नहीं होती। मैं भी अकेलाहूँ। यदि लोग आजाते तो और नहींतो, गपशप का आनन्द रहता।" नारद जी बोले, आपकी आज्ञा की देर है। सब सर के बल दौड़ते हुये आवेंगे। उनका यत्न ही बैकुण्ठ के लिये होता रहता है।" विष्णु ने समझाया, "वह केवल दिखाने की बात है। वास्तव में कोई भी आना नहीं चाहता। यदि तुम नहीं मानते तो जाओ। स्वर्ग का द्वार खुला हुआ है। जितने लोग आना चाहें उनको अपने साथ लाओ।" नारद मन में बहुत ही प्रसन्न हुये और दौड़ते हुये मृत्यु लोक में आये। सब से पहिले एक बूढ़ा

ब्राह्मण मिला जिसने बहुत लम्बा चौड़ा तिलक लगा रक्खा था और हाथ में सुमिरिनी लिये हुये 'राम' 'राम' कह रहा था। नारद ने सोचा यह धर्मात्मा मनुष्य है और बूढ़ा है, चलो इससे कहें। उन्होंने उसे प्रणाम करके कहा, "बाबा! वैकुण्ठ चलोगे?" वह बिगड़ खड़ा हुआ और क्रोध के साथ बोला, "बैकुण्ठ जाये तू जिसके न आगे नाथ न पीछे पगहा! मैं क्यों जाऊँ? मेरे तो बेटे पोते नाती निवासे सब कुछ हैं अभी मेरी स्त्री जीती है। मालिक का दिया हुआ धन द्रव्य माल असबाब सब कुछ है। जा! अपनी राह ले। किसी निखट्टू से बात चीत कर। नारद लज्जित होकर पानी पानी हो गये। कुछ दूर आगे जाने पर एक नवयुवक मिला। उस से पूछा "क्यों जी! वैकुण्ठ को चलोगे?" वह बोला, "हमारे लिये वैकुण्ठ में धरा क्या है! वैकुण्ठ तो बूढ़ों के लिये है जिनके न पेट में आँत हैं न मुँह में दाँत हैं। यह उन अपाहिजों के लिये है जिनसे कुछ काम काज नहीं हो सकता और बैठे बैठे माल उड़ाना चाहते हैं। मैं स्वर्ग को दूर ही से नमस्कार करता हूँ।"

अब नारद को विश्वास हो गया कि भगवान सच कहते थे। कुछ दूर चलकर एक बनिया को देखा जो भक्त जी के नाम से प्रसिद्ध था। सोचा—यदि और नहीं जाते तो न सही। यह विष्णु का प्रेमी है। यह अवश्य जायेगा। यदि यही चला चले तब भी हमारी बात तो रह जायेगी। इससे भी वही प्रश्न किया। वह बोला, 'आहा! आप नारद हैं, भगवान के प्रेमी भक्त! आइये, कुछ भोजन कर लीजिये।" नारद ने कहा, "भोजन पीछे करेंगे, पहिले मेरी बात का तो उत्तर दो।" वह बोला, "भगवान्! बात तो आपने अच्छी कही, बावन तोला पाव रत्ती। मेरे मन भी लगती है परन्तु लड़का सयाना हो जाये और दुकान का काम काज सम्भाल ले तब मैं चलूँ। अभी पोता हुआ है उसका भी

व्याह करना है। इन सब से छुट्टी पाकर तब चलूँगा।" नारद जी मन ही मन कहने लगे —"एक मनुष्य भी वैकुण्ठ चलने के लिये नहीं मिलता, चलो पशुओं को देखें, वह महा दुखी हैं। सम्भव है यह वहां चलना स्वीकार करें।" एक सुअर इधर उधर मुँह मार रहा था। उससे पूछा, "तू वैकुण्ठ चलेगा?" वह बोला, पहिले यह तो बताओ कि वहां विष्ठा होती है या नहीं?" नारद जी ने उत्तर दिया, "स्वर्ग में विष्ठा का क्या काम!" तब सूअर ने कहा, "चलो, चलो, अपना काम काज देखो। मुझे ऐसा बैकुण्ठ नहीं चाहिये जहां विष्ठा न हो।" नारद की कुछ न पूछिये। ऐसे लज्जित हुये कि फिर वहाँ ठहर न सके।

अन्त में झक मार कर उसी बनिया भक्त के पास पहुंचे, और सोचा कि वह चलने के लिए तैयार ही था, समझाने बुझाने से सम्भव है साथ ही चले। अब उसका लड़का घर का सब काम काज करता था और पोते का विवाह भी हो चुका था। नारद ने उससे कहा, 'अब तो वैकुण्ठ को चलो।" वह बोला, "जल्दी क्या पड़ी है? चलना तो आवश्यक है परन्तु घर बार का कुछ प्रबन्ध ठीक करलें तब चलेंगे।" नारद बेचारे उल्टे पांव फिरे। कई वर्ष पीछे फिर उसके पास गये। लड़के ने कहा, "बाप तो मर गये।" नारद ने दिव्य दृष्टि से देखा तो वह कुत्ता बनकर द्वार पर बैठा हुआ था। उसके कान में झुक कर कहा, "कहो! अब भी चलोगे या नहीं?" कुत्ता बोला, "लड़का अनसमझ और मूर्ख है। उसे अभी व्यवहार करना नहीं आता। वह घर का सारा धन द्रव्य उड़ा देगा। मैं बैठा हुआ उसकी देखभाल करता हूँ नहीं तो चोर सारा माल असबाब लूट ले जायेंगे।"

नारद ने उसे कितना समझाया परन्तु वह जाने के लिये तैयार नहीं हुआ। तब नारद ने जाकर विष्णु भगवान से कहा, 'वास्तव में महाराज! कोई यहाँ आना नहीं चाहता। आप सच

कहते थे। मैंने वर्षों चक्कर लगाये परन्तु किसी ने भी आना स्वीकार नहीं किया।"

यह संसार की दशा है। कोई क्यों किसी से उलझे! चलने दो सबको अपनी अपनी राह पर। तुम दुनियां के ठेकेदार बनकर किसी से न अटको। जो होना है होने दो।

त्याग

त्याग का अर्थ यह नहीं है कि घर बार छोड़ बैठे और लंगोटी लगा ली। इसको और कोई त्याग और वैराग कहे परन्तु मैं तो इसे कायरपना कहूँगा। कोई क्या त्याग करेगा और क्या ग्रहण करेगा? घर बार स्त्री पुत्र बाल बच्चे के छोड़ने से क्या हुआ? हाँ यदि मन की वासनाओं का त्याग करो तब तो बात है। मन तो जहां जाओगे वहां ही साथ रहेगा। आप बन्दर की तरह नाचेगा और तुमको भी तरह तरह के नाच नचायेगा। बाहरी कर्मों का त्याग, त्याग नहीं है। यह तो भ्रम की बात है। कर्म के संस्कारों के अंकुर तो रहते ही हैं। इनसे बचकर कहां निकलोगे! हां यदि साहस है तो इनको मेट दो, न रहे बांस न बजे बांसुरी और जो यों ही काम काज छोड़ बैठे या काम काज से भाग निकले तो भगोड़ा कब तक भागेगा और भागकर कहां जायेगा! कर्म के फल से तो ब्रह्मा भी छुटकारा नहीं दिला सकता। कर्म का भूत छाया की तरह पीछे पीछे लगा रहेगा। मनुष्य कुछ चाहता है और होता कुछ! क्यों ऐसा होता है? प्रारब्ध ऐसा कराता है—

आपन चेती होत नहिं, प्रभु चेती तत्काल।
बल चाह्यो आकास को, प्रभु पठयो पाताल॥
अपने मन कुछ और है, दाता के मन और।
ऊधो सों माधव कहें, झूटी मन की दौर॥

क्या झूटे त्याग और ग्रहण के झगड़ों में पड़े हो ? इनमें कब तक पड़े रहोगे ? छोड़ो इन निकम्मी बातों को। घर में रहो, बाल-बच्चों का साथ दो और धीरे धीरे मन को सोधते और साधते चलो। यह अच्छा है या जंगल और पगडंडियों की धूलि फाँकनी अच्छी है ? वह समय गया जब त्यागी और वैरागी गुलछर्रे उड़ाया करते थे। अब श्रद्धा से देना तो दूर रहा, कोई माँगी भीख भी नहीं देता। समय के परिवर्त्तन को भी देखते हो या वही पुराना राग अलापते रहोगे ! एक समय था, आया और गया। अब वह आने वाला नहीं है। क्या त्यागी होकर भिखमंगा बनना है ? छी ! छी !! छी !!! राम ! राम !! राम !!! यह कहाँ का साधुपना और त्याग है ? आज कल के ब्रह्मज्ञानियों की लीला देखो। मुख से तो "अहं ब्रह्मास्मि" का वाक्य सुनाते रहते हैं और माँगते हैं भिक्षा ! ऐसे भिखमंगे ब्रह्म को दो धक्के दो कि वह रसातल को चला जाये। यह ज्ञान मार्ग को कलङ्कित करने वाले हैं। न समझ न बूझ ज्ञानी बने फिरते हैं विचार सागर क्या पढ़ लिया कि बस ब्रह्मपद को प्राप्त हो गये। तुम यह चाल न चलो। जो कोई झूटे त्याग का गीत गाये उससे कहो "बाबा ! स्वयं बातें न बना। तेरी रहनी सहनी और तेरा जीवन व्यवहार बता रहा है कि तू गली गली ठोकरें खाता फिरता है, क्या हमको भी वैसा ही बनाना चाहता है ? हम तेरे ज्ञान को नहीं चाहते। यदि ज्ञान का यही अर्थ है कि मनुष्य भीख माँगता फिरे तो तू अपना ज्ञान अपने पास रख।'

कौड़ी कौड़ी माया बटोरें, बने हैं कैसे ज्ञानी।
ज्ञान पन्थ की खबर न पाई, देखो यह नादानी॥

भला यह कौन ज्ञान है ?

सच्चा त्यागी वह है जिसे सब कुछ प्राप्त हो और वह उस की ओर ध्यान तक न दे। संसार में रहना परन्तु संसार का

होकर न रहना त्याग है। ऐसे मनुष्य को लंगोटी लगाने की क्या आवश्यकता है ?

दृष्टान्त (१)—**नासिर-उद्दीन** दिल्ली का बादशाह गुलामों के ख़ानदान में से था। वह बड़ा ही भक्त, धर्मात्मा और सत्यवादी था। बाहशाह होने पर भी ख़ज़ाना से एक पैसा अपने लिये नहीं लेता था। शाही कपड़े भी केवल उसी समय पहिनता था जब कि राज सिंहासन पर बैठता था। और समय वह सादे कपड़ों से काम लेता था। खाने पीने के लिये ख़र्च की यह दशा थी कि छुट्टी के समय कुरान लिखा करता था। और जब किताब पूरी हो जाती थी तब बाज़ार में बिकवा दिया करता था। जो कुछ मिलता था उसी से अपने खाने पीने और पहिनने ओढ़ने का प्रबन्ध करता था। उसने हुक्म दे रक्खा था कि किताब बेचते समय किसी को कानों कान पता न लगने पाये कि यह बादशाह की लिखी है! वह बहुत ही अच्छा लिखता था इसलिये किताब हाथों हाथ बिक जाती थी। रोटी तक पकाने के लिये कोई बाँदी या लौंडी नहीं थी। इसकी बेग़म आप ही घर का सारा काम काज करती थी। यह भी बड़ी ही सीधी सादी और पवित्रात्मा थी। दोनों ही किसी का दिल नहीं दुखाते थे। एक बार बादशाह किसी अमीर को अपने हाथ का लिखा हुआ कुरान दिखा रहा था। अमीर ने एक जगह उसमें ग़लती बताई। बादशाह ने उस शब्द को घेर दिया। जब वह चला गया तो उसे दूर करके जैसा था वैसा बना दिया। एक दरबारी ने पूछा, 'आपने ऐसा क्यों किया ?" उसने उत्तर दिया, "यदि मैं यह कहता कि यह ठीक है तो उसे बुरा लगता। मैं जानता था कि मैंने अशुद्ध नहीं लिखा है परन्तु उसे घेर देने में मेरी कोई हानि नहीं थी।'

दृष्टान्त (२)—**वीर विक्रमादित्य** उज्जयन नगरी का राजा अपने समय का बहुत ही प्रसिद्ध और अद्वितीय महाराजा हुआ है। उस समय सारे संसार में इसके राजदूत रहा करते थे। यह इतना पराक्रमी और उपकारी हुआ है कि इसका नाम ही "प्रजा दुख भंजन" होगया था। इतने बड़े महाराजा होने पर भी इसने एक छोटा सा घर सपरा नदी के किनारे बनवा रक्खा था। घर में चटाई के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। यह चटाई पर सोता और सपरा नदी से अपने हाथ से घड़े में पानी भर लाता था। इसका नाम सच्चा त्याग और सन्तोष है। अपाहिजपने को सन्तोष नहीं कहते। इतिहास से पता लगता है कि इस ने बहुत से राज्यों को जीत लिया था। इसके राज्य में अनेक प्रकार की उन्नति थी। यह बड़ा ही गुणग्राही और विद्या का प्रेमी था। इसके दरबार के नव रत्नों का नाम तुमने सुन रक्खा होगा जिनमें से एक **कालीदास** भी हुआ है। यह संस्कृत भाषा का अद्वितीय कवि हो गया है। यदि **विक्रमा दित्य** ने त्याग का सच्चा अर्थ न समझा होता तो हम में तुम में से आज कोई उसका नाम भी न जानता।

दृष्टान्त (३)—कोई राजा था जो बड़ा ही न्यायकारी, सत्यवादी, पुरुषार्थी और धर्मात्मा था। उस नगर में कोई साधू आ निकला। राजा साधू की सेवा करना चाहता था परन्तु साधू उसे स्वीकार नहीं करता था। राजा जङ्गल में घूमने गया। वहाँ साधू वृक्ष के नीचे बैठा हुआ मिला। राजा भी प्रणाम करके उसके सामने बैठ गया। राजा के बहुत आग्रह करने पर साधू ने महल में दर्शन देना स्वीकार कर लिया और साथ ही साथ शहर में चला आया, राजा की आज्ञानुसार मन्त्री ने महल और ख़ज़ाना सब कुछ साधू को दिखलाया। उसने बे परवाई के साथ देख भी लिया।

इतने में भोजन का समय हो गया। दोनों रसोई घर में आये। राजा की रानी दोनों के सामने दो थाल ले आई। साधू के थाल में तरह तरह के पकवान थे परन्तु राजा के थाल में बाजरे की दो रोटियाँ और बथुये का साग था। साधू देखकर हँसा। राजा ने पूछा, "आप क्यों हँसे ?' वह बोला 'आप का भोजन देखकर।' राजा ने कहा, 'इसमें भला हँसने की क्या बात है ? मैं जब से राज सिंहासन पर बैठा हूं प्रजा के धन में से एक पैसा भी अपने लिये नहीं लिया क्योंकि इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। वह जैसे प्रजा से लिया जाता है वैसे ही उन्हीं के लाभार्थ खर्च भी किया जाता है। मेरे पास दस पाँच बीघे खेत है मैं उसमें आप खेती करता कराता हूँ। जो कुछ उससे मिलता है उसी से अपना काम चलाता हूँ। ऐसा करने से मेरे चित्त की वृत्ति चंचल नहीं होती और न मुझसे कभी अन्याय होता है।' साधू बोला, "आप सच्चे और मैं केवल नाम का साधू हूँ। आपका खाना देखकर मुझे अपने ऊपर हँसी आई कि मैं घर बार छोड़कर भी साधू नहीं हुआ और आप घर में रहकर सच्चे साधू का धर्म पालन करते हैं।' राजा ने निवेदन किया, "महाराज ! मैं बहुत दिनों तक इन बातों को विचारता रहा। अन्त में मैंने निश्चय कर लिया कि मुझे राजा होने पर भी कोई अधिकार नहीं है कि दूसरों की कमाई हड़प करूँ। मन्त्री और दरबारी के लिये यह क्या कम है कि उन्हें विशेष प्रतिष्ठा मिली हुई है ! मेरी समझ में प्रत्येक मनुष्य को अपने लिये नाज पैदा करना चाहिये। एक मनुष्य राज कर्मचारी है हुआ करे परन्तु अपनी रोटी अपने हाथ से क्यों नहीं पैदा करता ? बेचारे गृहस्थ रात दिन बैल की तरह जुते रहते हैं, फिर भी दुखी ही रहते हैं। मैं औरों पर दबाव डालकर इस नियम पर चलाना नहीं चाहता क्योंकि देश में आन्दोलन मच जाने का भय है। मैंने अपने लिये इस नियम का पालन करना अपना धर्म

समझ रक्खा है।' साधू बोला, 'राजन्! आप धन्य हैं! आप में ही केवल सच्चा त्याग और वैराग है। नंगी क्या नहायेगी और क्या निचोड़ेगी!"

दृष्टान्त (४)—एक बहुत ही उपदेश जनक कथा है। सच है या झूठ? इससे प्रयोजन नहीं। एक चमार घास छील कर बेचा करता था। वह साधू हो गया और किसी स्थान पर आसन जमाया। सन्ध्या समय बाजरे की दो रोटियाँ साग और एक लोटा पानी आजाया करता था और वह खा पी कर भजन करता था। संयोग वश वहाँ के राजा को भी वैराग उत्पन्न हुआ और वह भी साधू हो गया। सन्ध्या समय उसके लिये नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन थाल में सजकर आते थे। चमार साधू ने कहा, वाह! मैं इतने दिनों से साधू हूँ। मुझको बाजरे की रोटी के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। और यह अभी साधू हुआ है, इसकी इतनी आओ भगत!" उत्तर मिला "इसने त्याग किया है। तूने त्याग नहीं किया। यदि यह पसन्द नहीं है, ले खुरपा और टोकरा और घास छील कर बेचा कर।"

दृष्टान्त (५)—किसी राजा के यहाँ ब्रह्मणों का भोजन था। बहुत से ब्राह्मण आये। उसमें एक बहुत ही कङ्गाल भी था उसने कुछ थोड़ा सा लिया और सन्तुष्ट होकर बैठ रहा कि जब सब लोग उठें तो यह भी उठ कर चला जाये, परन्तु वहाँ कुछ और ही लीला होने लगी। जब सब लोग भली भाँति खा पी चुके राजा ने कहा, "अब जो कोई जितने लड्डू खायेगा उतने ही दो आने दक्षिणा में मिलेंगे ब्राह्मण लालच में आकर खाने लगे परन्तु इस कङ्गाल ब्राह्मण ने हाथ नहीं उठाया, चुप चाप बैठा हुआ देख रहा था। राजा ने थोड़ी देर पीछे दो आना की जगह चार आने, फिर आठ आने और फिर एक रुपया लगा दिया परन्तु यह चुप ही था। राजा ने इससे पूछा

"तुम क्यों नहीं खाते हो ? मैं तुम्हें लड्डू पीछे दो रुपये दूँगा इसने उत्तर दिया,"मुझ को जो कुछ थोड़ा बहुत खाना था खा लिया। मैं लालच वश यहाँ नहीं आया। केवल आवश्यकता खींच लाई। पेट भर लिया, अब अधिक लालच क्या करूँ !"

राजा ने उसको कुछ और देना चाहा वह बोला "मैं बाजीगर नहीं हूं कि पेट को थैला बना लूँ और खेल दिखाकर तुम से रुपये लूँ । मैं ब्राह्मण हूँ।" राजा ने फिर पूछा, "क्या यह ब्राह्मण नहीं हैं ?" इसने कहा, "होंगे मैं क्यों किसी को बुरा कहूँ ।" राजा ने इसे कुछ रुपये देना चाहा परन्तु इसने स्वीकार नहीं किया और अन्त में यह कह कर उठ खड़ा हुआ, "आज का काम चल गया (कल कोई काम धन्दा मिल जायेगा। फिर वहाँ नहीं ठहरा।

सच्चा यज्ञ

साखी

१–दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान।
कबीर दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान ॥ १ ॥
२–जहाँ दया तहाँ आप हैं, जहाँ क्रोध तहाँ साप।
दया बसै जाके हिये, तहां बिराजैं पाप ॥ २ ॥
३–दया छिमा और दीनता, भक्ति प्रेम का चिन्ह।
कहैं कबीर छिमा बिन, सकल होत हैं खिन्न ॥ ३ ॥

दया करना सच्चा यज्ञ है। इसके अभ्यास से अहंकार की जड़ आपही आप कट जाती है और मन में शुभ भावना उत्पन्न होती है जिस का फल बहुतसे बहुत और अधिक से अधिक है। दयावान में अभिमान नहीं होता और यह परमार्थ का सच्चा पात्र बन जाता है।

दृष्टान्त (१)—युधिष्ठिर ने बहुत बड़ा यज्ञ किया । ऋषि मुनि विप्र ब्राह्मण सब उसमें सम्मिलित थे । जिसने जो मांगा वही उसको दान दिया गया । सब लोग यही कहते थे कि आज तक ऐसा यज्ञ किसी ने भी नहीं किया था । अभी यज्ञ समाप्त ही हुआ था और लोग उसकी बड़ाई कर ही रहे थे कि एक नेवला आया जिसका आधा धड़ सोने का हो गया था उसने यज्ञशाला की राख में लोट पोट लगाई और फिर उन सबसे कहने लगा, "कौन कहता है कि यह बड़ा यज्ञ है ! तुम इसको यज्ञ कहो परन्तु मैं नहीं कहता ।" सब लोग आश्चर्य के साथ एक दूसरे का मुँह देखने लगे । किसी ने पूछा, "सच्चा यज्ञ कैसा होता है ?" नेवला बोला, "सुनो ! एक ब्राह्मण के घर में चार प्राणी रहते थे—ब्राह्मण, उसकी स्त्री, उसका बेटा और उसकी बहू । चारों ही धर्मात्मा और दयावान थे । देश में सूखा पड़ी । पूरे एक महीने तक उन्हें अन्न नहीं मिला । सबने मिलकर खेत से आध सेर जौ बीने और उसके सत्तू बनाये । चारों प्राणी अपना अपना भाग लेकर खाने को बैठे । उसी समय उनके यहां एक भूखा अतिथि आ गया । उसने धीमे स्वर में कहा "आज तीन दिन से अन्न नहीं मिला । जो कोई मेरी प्राण रक्षा करेगा उसको बड़ा फल मिलेगा ।" ब्राह्मण ने कहा, "मैं गृहस्थी हूँ । यदि अतिथि योंही चला जायेगा तो मैं पतित हो जाऊँगा, इसलिये तुम लोग अपना अपना भाग खाओ । मैं अपना भाग इसको दे दूँगा ।" इसने ऐसा ही किया परन्तु अतिथि की तृप्ति नहीं हुई । तब ब्राह्मणी ने भी अपना भाग उसको दे दिया । इससे भी उसका पेट नहीं भरा । तब बेटे ने भी अपना भाग उसे खिलाया । उसे फिर भी अतृप्त देखकर बहू ने अपना सत्तू श्रद्धा और भक्ति के साथ उसकी थाली में डाल दिया । वह खाकर आशीर्वाद देकर चला गया । यह चारों महीने भर से भूखे थे । सबके सब मर गये । कुछ सत्तू पृथ्वी पर गिरा था । मैंने

उसके ब्राह्मण भोजन को सच्चा यज्ञ समझ कर लोट पोट लगाई। मेरा आधा धड़ सोने का होगया क्योंकि सत्तू बहुत ही कम रहा था। उस समय से मैं इस ताक में रहता हूँ कि यदि कहीं और भी सच्चा यज्ञ हो तो वहाँ लोट पोट करने से शेष आधा धड़ भी सोने का हो जावे। मैंने सुना कि महाराजा युधिष्ठिर ने महायज्ञ रचा है। यहां आकर देखता हूँ तो यह यज्ञ झूठा और दिखावे का निकला जिससे केवल यज्ञ करने वाले को साधारण मनुष्यों की दृष्टि में मान बड़ाई का फल तो मिल गया परन्तु यह सच्चा यज्ञ नहीं है।"

सारे ऋषि मुनि इसकी बात सुनकर दंग रह गये।

दृष्टान्त (२)—एक बनिये ने कई यज्ञ किये थे। सब के दिन एक तरह के नहीं रहते। काल भगवान का चक्र बराबर चलता रहता है। यह बेचारा भी निर्धन हो गया था। स्त्री ने कहा, "किसी राजा के पास जाकर अपने एक यज्ञ का फल बेच दो। रुपया पैसा हाथ आजाये जिससे दुख दूर हो।" बनिया सोच विचार में पड़ गया परन्तु स्त्री के आग्रह करने पर चल खड़ा हुआ चलते समय उसकी घर वाली ने ग्यारह रोटियां बनाकर राह में खाने के लिये दीं। वह उन्हें लेकर राजा के पास चल निकला। राजधानी दूर थी। राह में उसने एक कुतिया को देखा जिसने बहुत बच्चे दिये थे बरसात के दिन थे। कई दिन से उसे खाना नहीं मिला था। बनिये को याद आई। एक एक करके ग्यारह रोटियां कुतिया को खिला दीं और आप भूखा राजा के दरबार की ओर चला गया। राजा के जासूस ने राजा से यह घटना पहिले ही सुना रक्खी थी। इसके दरबार में पहुंचते ही राजा ने कहा, "मैं सुन चुका हूँ। तू ने राह में बहुत बड़ा यज्ञ किया है। मेरे पास इतना रुपया नहीं है। जो उसके फल को मोल ले सकूँ। हां यदि कोई छोटा मोटा यज्ञ होता तो मैं साहस करता।" अन्त

में राजा ने उसे कुछ दे दिलाकर बिदा कर दिया और उसके यज्ञ के फल को मोल लेने का साहस नहीं किया।

दृष्टान्त (३) कोई मुसलमान फ़क़ीर जंगल में से होकर कहीं जा रहा था। जंगल में कोसों कोई झील,तालाब, बावड़ी या नदी नहीं थी। उसने देखा कि कुयें के पास बहुत देर से एक प्यासा कुत्ता पड़ा हुआ हिचकियां ले रहा है। और उसके मरने में कोई कसर नहीं है। फ़क़ीर के पास डोल रस्सी नहीं थी। उसके हृदय में दया जो आई उसने अपनी पगड़ी फाड़ कर रस्सी बनाई और टोपी का डोल बनाकर कुयें से बड़ी कठिनाई के साथ पानी निकाला और कुत्ते को पिलाया उसकी जान बच गई। वह कृतज्ञता प्रकट करने के लिये अपनी पूँछ हिलाने लगा।

यह सच्चा यज्ञ था।

दृष्टान्त (४)—किसी ब्राह्मण को ज्ञान की समझ नहीं आती थी। पढ़ना लिखना, प्रमाण, युक्ति और शास्त्रार्थ सब कुछ सीखा परन्तु बोध नहीं होता था। इसे पंडित बनने की लालसा नहीं थी किन्तु वह साक्षात्कार करना चाहता था। एक दिन वह विचारता आ रहा था कि किस तरह कोई अपने में सबको और सब में अपने को देखे! यह तो समझ नहीं आती। राह में एक कुयें के पास पहुँचा। कोई मैला कुचेला चिथड़ा लपेटे हुये चमार सूर्य की प्रचण्ड गर्मी में चलने से मूर्च्छित होकर पड़ा था। इसे दया आई। चमार को अपनी पीठ पर लाद वृक्ष की छाया में उठा लाया और थोड़ा सा ठण्डा पानी पिलाया। जब उसे सुध हुई, उसने आँखें खोलीं और प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। उसी मय इसका हृदय खिल उठा और वह आत्मदर्शी बन गया।

इसने भी यज्ञ किया था नहीं तो ऊँची जाति का कौन मनुष्य चमार को छूने लगा ! इस यज्ञ के पुण्य प्रताप से उसने चमार में उसी आत्मा को देखा जो उसमें थी।

—)(—

बिरछा फलै न आपको, नदी न पीवै नीर।
पर स्वारथ के कारनै, सन्तन धरा शरीर॥

जो मनुष्य श्रद्धा और प्रेम का व्यौहार करता है उसका हृदय कमल की भांति खिल जाता है और इसके खिलने से आत्मा आत्मा के साथ बात चीत करने लग जाती है। यह एक गुप्त रहस्य है।

१. शम्भु बसैं कैलाश पर, ब्रह्मा गगन मँझार।
विष्णु क्षीर सागर रहैं, परस्वारथ के लार॥ १॥
२. पर स्वारथ के काज, शेष महि भार उठावै।
औरों का करै काम, ध्यान औरहिं का लावै॥ २॥
३. जेते देवी देवता, करैं सकल उपकार।
शम्भु बसैं कैलाश पर, ब्रह्मा गगन मँझार॥ ३॥

—❀—

१. दया धर्म गह लीजिये, यही वस्तु है सार।
दया धर्म का मूल है, साधो ! करो विचार॥ १॥
२. साधो करो विचार, मनुष देही जो पाई।
बृथा जन्म गया बीत, जो मन में दया न आई॥ २॥
३. जब लग स्वांसा पिंड में, करले पर उपकार।
दया धर्म गह लीजिये, यही वस्तु है सार॥

—❀—

१. लेना हो सो जल्द ले, अवसर जासी चाल।
अवसर के चूके नरा ! मारै काल कराल॥ १॥

२. मारै काल कराल, फँसावै यम की फांसी।
बिगड़े अपना काम, होय जग भीतर हांसी॥ २॥
३. दया राखिये चित्त में, कीजै दुखी निहाल।
लेना हो सो जल्द ले, अवसर जासी चाल॥ ३॥

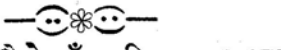

दृष्टान्त (५)—**नौशेरवाँ** फारिस का बादशाह था। उसने किसी गाँव में अपना महल और बाग़ बनवाया। महल से मिला हुआ एक विधवा बुढ़िया का झोंपड़ा था। उसके रोटी पकाने से बादशाह की सदर बैठक धुयें से काली होगई, वज़ीरों ने बुढ़िया को बहुत समझाया कि रुपया लेकर अपना घर छोड़ दे परन्तु उसने एक न मानी जब नौशेरवाँ ने सुना उसने कहा, "जाने भी दो! वह झोंपड़ा बुढ़िया का बहुत पुराना है। उसे अधिकार है कि वह बेचे या न बेचे। मैं दबाब डालना नहीं चाहता।" एक दिन रूम के बादशाह का एक राजदूत बादशाह से मिलने आया। उसने बाग़ और महल की बड़ी प्रशंसा की परन्तु काली बैठक को देखकर उसने घृणा प्रकट की। नौशेरवाँ हँसा, "यह धुआँ जो इस बुढ़िया के झोंपड़े से निकलता है इस बैठक को अत्यन्त सुन्दर और शोभायमान बनाता है। इसकी स्याही से मेरी प्रशंसा लिखी जा रही है जो सदैव बनी रहेगी और लोग बिचारेंगे कि नौशेरवां ने बादशाह होकर भी बुढ़िया के साथ अन्याय और अत्याचार नहीं किया।" राजदूत बोला, "आप धन्य हैं! आप जैसा बादशाह होना महा कठिन है।"

यह सच्चा यज्ञ है।

जीवन का नियम और धर्म यह होना चाहिये कि वह औरों के काम आये। जो दूसरों के लिये जिया उसका जीना, जीना कहलाता है। जो केवल अपने लिये जिया उसका जीना मृत्यु से भी कहीं बुरा है।

संसार कल्पित है

—०×०—

फिर वही बात आई। जो कुछ है भावना और कल्पना (खयाल) ही है। इसे मेट दो, कहीं कुछ नहीं यह संसार जो भासता है और जिसमें हम फँसे हैं वह क्या है कल्पना ही तो है। संसार वास्तव में और कोई वस्तु नहीं है, इसका स्थूल रूप मेरा तेरापना है। जिसको तुम मेरा कहते हो उसी से बँध जाते हो जिस को तेरा कहते हो उससे दूर भागते हो! एक मन की वृत्ति है। उस के दो रूप हैं—एक 'मेरापना" और दूसरा "तेरापना" इसे कोई बिरला ही जानता है नहीं तो सब इसी में फँसे हुये दुख और कष्ट भोग रहे हैं। फिर भी इससे छुटकारा नहीं चाहते। मनुष्य को चाहिये कि इन दोनों को तोड़ दे परन्तु यदि वह इनमें से किसी एक को प्यार करता है तो उससे छुटने की दो युक्तियाँ हैं—एक तो इस प्रकार "मेरा मेरा" करना जिससे "मेरेपने" का अन्त होजावे दूसरे इस प्रकार "तेरा तेरा' करना कि वह यह वृत्ति भी अन्त को पहुँच जाये आदि और अन्त में बन्धन नहीं है। बन्धन केवल बीच में है। बीच की अवस्था को यदि तुम लांघ जाओगे, स्वतन्त्रता और मुक्ति की दशा में पहुँच जाओगे। यह हम तुमको सहज युक्ति बताते हैं। हम उस मनुष्य को गौरव की दृष्टि से देखते हैं जो साधारण रीति से जगत् का व्यवहार करता हुआ जीवन की अनेक अवस्थाओं को लांघता जाता है। एक न एक दिन वह आप किनारे पहुंच जायेगा परन्तु यदि धैर्य्य नहीं है दो फिर "मेरापना" और "तेरापना" का अन्त करदो जिसमें इसका भी परिणाम देखने में आये। यदि इसी "मेरेतेरेपने" से गहरा सम्बन्ध है तब भी कुछ हर्ज नहीं इसको और भी गहिरा और घना करलो। फिर आप ही असिलयत को जान लोगे।

जीव—आप यह क्या कह रहे हैं ? आप तो उलटे और फँसाने की शिक्षा दे रहे हैं । आपको इसके विरुद्ध कहना चाहिये ।

शिव—हँजी हाँ ! हम फँसाने ही की युक्ति बताते हैं। जब तक कोई भली भाँति फँसेगा नहीं तब तक मुक्ति का विचार उसके मन में धँसेगा नहीं । यदि फँसना है तो अच्छी तरह से फँसो जिसमें इसका कुछ फल भी हो यों ही क्या कर रहे हो ?

जीव—यह उलटी बात है ।

शिव—उलटी नहीं, बात तो सीधी है परन्तु तुम्हारी समझ में कठिनता से आती है। तुमने बीच में रोक दिया नहीं तो हम बड़ी उत्तमता से समझा देते ।

जीव—बहुत अच्छा ! भूल हो गई । क्षमा कीजिए । अब आप कहते चलिये । मैं ध्यान के साथ सुनता चलूँगा ।

शिव—सुनो ! या तो ऐसे बनो कि मेरा तेरा पना तुम पर अपना प्रभाव न डाल सके और यदि मेरा तेरा पना करना ही है तो उसको आधा तिहाई न करो । पूरा पूरा करो । बात तो यों है:—

मोर तोर की जेवरी, बट बाँधा संसार ।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके नाम अधार ॥

दूसरी बात यह है:—

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ ।
बारी तेरे नाम की, जित देखूँ तित तूँ ॥

दो हो गईं अब तीसरी सुनो:—

मैं मैं करता मैं भया, मुझमें रही न तूँ ।
बारी अपने रूप की, जित देखूँ तित हूँ ॥

अब तुम समझे कि नहीं ?

जीव—अब तक नहीं समझा। आप पहेली बुझाते हैं। मैं इसको कैसे समझूँ।

शिव—सुनो ! बात तो सीधी साधी है परन्तु वास्तव में कठिनाई से समझ में आती है। पहली अवस्था परमहंसों की है जिनमें मेरा तेरा पना नाम को भी नहीं होता। इनकी सहज वृत्ति होती है। दूसरे लोग जो "तेरा तेरा" करते रहते हैं वह भक्त जन हैं। उन्हें भगवन्त के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता, यहाँ तक कि वह अपने अंग प्रति अंग को भी उसी का रूप समझते हैं।

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते, क्या लागे गा मोर॥

इनकी दृष्टि में वही एक "तेरा तेरा" और "तू तू" करते रहना बस जाता है उन्हें और कुछ भी दिखलाई नहीं देता।

यह "तू तू" करने का मार्ग है। जितना जी चाहे दिल खोल कर "तेरा तेरा" करो। जहां विचार में दृढ़ता आई चित्त की एकाग्रता से सार वस्तु का ज्ञान आप ही आप होने लगेगा। यह पन्थाइयों का मार्ग है और सुगम है। तीसरे यदि "मैं मैं" करना है तो ज्ञानियों के मार्ग पर चलो। "अहंब्रह्म" कहते हुये दिल को उभारते चलो तब तो बात है। जिसमें लगो सच्चे होकर लगो। आधा तीतर आधा बटेर ठीक नहीं। भक्ति और ज्ञान दोनों का आदर्श एक है। अपने मन के भाव को देखकर जो तुम्हें रुचे उसी से लौ लगाओ ! हमें तो पन्थाइयों का मार्ग अच्छा लगा उसी के प्रेमी हैं। वह चित्त को भा गया। उसी से शान्ति मिलती है परन्तु हम यह नहीं कहते कि सब लोग इसी मार्ग पर चलें।

जा का जासे मन रमा, ता को ता से काम।
सकल बासना त्याग कर, जपिये गुरु का नाम॥

ऊपर जो कुछ हमने लिखा है उस का तात्पर्य केवल यह है कि यह संसार कल्पित है। यदि इससे घबराहट नहीं है तो फिर शिक्षा और उपदेश की आवश्यकता भी नहीं है। कोई न परमहंसों को शिक्षा देता है और न संसार में लम्पट मनुष्य को। इन दोनों को इसकी आवश्यकता नहीं। अब रहे द्विचिताई वाले। इनको दुःख है और यह शिक्षा पाने के अधिकारी भी हैं। यदि किसी में 'तेरा पना' का भाव दृढ़ है तो वह मालिक से 'तेरे पने' का नाता जोड़े और उससे मिल कर सुख रूप हो जाये। यदि 'मेरेपने' की ओर ध्यान है तो सबका त्याग करे और ज्ञान की समझ लेकर त्याग करते हुये अपने रूप को पहिचान कर सुख रूप बने। सुख रूप तो पहिले ही से है, केवल द्विचिताई का भ्रम है जिससे दुख पा रहा है। यह द्विचिताई जब तक न छूटेगी भ्रम दूर न होगा और भ्रम के दूर न होने से अपने रूप के सुख का भान न होगा अपनी निबल भावना को सबल भावना से परास्त करो और इसके लिये केवल यही दो ढङ्ग हैं। यदि कोई तीसरा हो तो हम उसे नहीं जानते।

अब संसार के कल्पित होने का दृष्टान्त सुनो।

—❀—

दृष्टान्त (१)—किसी का लड़का मर गया। वह दुखी था। **बुद्ध भगवान** के पास पहुँचा। आपने पूछा, क्या चाहता है?" वह बोला, "अपने लड़के को एक बार देखने की इच्छा है।" उन्होंने कहा, "अच्छा! आँख बन्द कर।" जब उसने आँख बन्द की, देखता क्या है कि लड़का देवलोक में देवताओं के लड़कों के साथ खेल रहा है। इसने उससे मिलकर प्यार के साथ कहा

"अपने घर चल। हम सब तेरे लिये बहुत ही दुखी हैं।" लड़का बोला, "क्यों ? बात क्या है ?" उसने उत्तर दिया, "तेरे बिना मेरा घर सूना हो गया। तेरी माता रात दिन विलाप करती रहती है।" उसने कहा, "मेरा तेरा पना संसार है। न कोई, मेरा है न तेरा है। यह केवल कल्पना मात्र है। मरने के साथ ही यह सम्बन्ध टूट गया। भ्रम को छोड़ दे। जा अपना काम कर। मुझ में पाप नहीं है। मैं इस नाते को तोड़ चुका हू। अब मुझको तुझ से कोई सम्बन्ब नहीं है।"

ना कोइ मेरा ना कोई तेरा, सब है भर्म विकार।
मेरा तेरा वह करै, मन में जाके धमार॥

यदि मैं तेरा होता या यदि तू मेरा होता तो फिर मैं तुझ से अलग क्यों होता ! तेरा तो यह शरीर भी नहीं है। कभी न कभी इस का भी त्याग हो जायेगा।" बाप यह सुनकर दंग रह गया। आँख खुली, बुद्ध भगवान से बोला,'असलियत समझ में आगई।'

"अब आप मुझे अपना शिष्य बनाइये।" उन्होंने दीक्षा दी थोड़े दिनों में वह उनके सत्संग के प्रताप से कुछ का कुछ हो गया और संसार छूट गया।

—❀—

दृष्टान्त (२)—किसी मनुष्य के परदेश यात्रा के समय पुत्र उत्पन्न हुआ। कई वर्ष पीछे लड़के की माँ ने लड़के से बाप के लिवा लाने की प्रार्थना की। वह बाप के बुलाने के लिये घर से निकला। उसका बाप भी घर लौट कर आ रहा था दोनों एक सराय में पहुँचे। लड़का पहिले पहुंचा था और एक कोठरी किराये पर ले ली थी। बाप देरसे आया। उसे सराय में कोई कोठरी खाली नहीं मिली। उसने भटियारी को लालच दिया। वह लड़का बाहर निकाल दिया गया। बाप कोठरी में और लड़का बाहर सोया। एक दूसरे

को पहिंचानते नहीं थे। दूसरे दिन देखा गया तो लड़का सरदी खाकर मर गया था। जब पुलिस आई और उसका असबाब देखा गया माँ की चिट्ठी निकली जिसमें बाप को यह लिखा हुआ था कि यह तेरा लड़का है। जब बाप को पता लगा वह रोने चिल्लाने लगा "हाय ! हाय !! लड़का मेरे ही अत्याचार से मर गया। मैंने महा पाप किया। क्या किसी पिता ने अपने पुत्र के साथ ऐसा व्यवहार कभी किया होगा !" पर अब क्या हो सकता था ! घंटों रोता पीटता रहा। क्या बाप-पना और लड़का-पना कल्पित नहीं था ! यदि इस में कुछ भी असलियत होती तो बाप बेटे को तुरन्त ही पहिंचान लेता। यह संसार है। वास्तव में न कोई किसी का बाप है, न कोई किसी का बेटा है। जैसा विचारा जाता है वैसा ही फुरता है। पहिले तो वह लड़का नहीं जान पड़ा अब माँ की चिट्ठी के ध्यान दिलाने से वह लड़का हो गया। जो बात है वह केवल भ्रम मात्र है।

तू मत जाने बावरे ! तेरा है सब कोय।
पिंड प्रान सों बँध रहा, सो नहिं अपना होय॥

—❀—

दृष्टान्त (३)—गोमती का लड़का मर गया। वह उसके दुख से बावली बन गई। लोगों ने बहुत समझाया कि अब यह मरगया है परन्तु वह नहीं मानती थी। मरे हुये लड़के को गोद में लिये हुये हकीम वैद्य की खोज में घूम फिर रही थी। बुद्धदेव इस जगह पधारे थे। किसी ने उनके पास जाने की सलाह दी। वह पहुँची बुद्ध ने प्रेम के साथ कहा, "यदि तू किसी ऐसे घर से राई ले आवे जिस में कोई मरा न हो तो मैं इसको जिला सकता हूँ।" वह लड़के को गोद में दबाये हुये घर घर फिरती रही। कई स्त्रियों ने राई देनी चाही परन्तु जब जब और जिस जिस से इसने पूछा कि "क्या

तुम्हारे घर में कोई मरा है ?" सब ने यही कहा कि "यह मृत्यु लोक है। यहाँ सभी मरते हैं।" वह निराश होकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। सूर्य्य भगवान अस्त हो गये रात को उसने सितारों को अपनी २ जगह छोड़ते देखा और दिन निकलते निकलते उनका कहीं चिन्ह भी न था। समझ गई यह संसार नाशवान है। काल के चक्र में सब ऐसे ही चक्कर लगाते और जन्मते मरते रहते हैं दिन निकलते ही उसने लोथ को पृथ्वी में गाड़ दिया और **बुद्ध भगवान** की शरण में आकर उनकी चेली बन गई।

आये हैं सो जायँगे, राजा रँक फ़क़ीर।
एक सिंहासन चढ़ चले,यक बंधे जात जंजीर॥

चिंता ताकी कीजिये, जो अनहोनी होय।
यह मारग संसार का,नानक थिर नहिं कोय॥

जैसा कहोगे वैसा सुनोगे

यह संसार दर्पण के सदृश है जिसमें तुम्हारा ही प्रतिबिम्ब पड़ता है। मुँह बनाओ, बना हुआ मुँह दिखाई देगा। मुँह बिगाड़ो, बिगड़ा हुआ मुँह देखोगे। भक्त की तरह व्यवहार करो, भक्त के रूप में दिखाई दोगे,ज्ञानी बनो ज्ञान की लीला देखोगे और दिखाओगे संसार दर्पण है। इस दर्पण की समझ किसी बिरले ज्ञानी को आती है। अपना ही बिम्ब और प्रतिबिम्ब उसमें दिखलाई देता है। उसे अन्य समझ कर उससे लड़ रहे हैं। क्या अंधेर की बात है ! यदि कोई मनुष्य अपना हाथ पांव काटे तो उस को लोग मूर्ख कहेंगे परन्तु यहां संसार के सारे प्राणी अपना शरीर आप चबा रहे हैं और अपनी छाया से लड़ रहे हैं।

दृष्टान्त (१)—एक कुरूप मनुष्य कहीं जा रहा था । राह में एक दर्पण पड़ा हुआ मिला । उसको उठा लिया । अपने रूप की छाया उसमें देखकर उसे पटक दिया और कहने लगा, "इसी कुरूपता के कारण तुमको कोई मनुष्य यहां फेंक गया है । अच्छे होते तो क्यों यह दुर्दशा होती ?" वाह ! क्या कहना है ! धन्य है तेरी बुद्धि को !

—*—

प्रत्येक मनुष्य ने अपना संसार आप बना रक्खा है । 'जैसा जिसका मन तैसा तिसका धन और तैसा तिसका यत्न ।' एक मनुष्य मन का अच्छा है । उसके लड़के वाले, स्त्री सम्बन्धी सब अच्छे और सभ्य हैं । दूसरा मनुष्य मन का बुरा है । उसके यहां बुराई ही बुराई दिखलाई देगी । एक स्वर्ग में रहता है । दूसरा नर्क में रहता है । दोनों ही ने अपने अपने मन के अनुसार अपना अपना संसार बना रक्खा है । जैसा इसने अपना रूप बनाया है वैसे ही उसे दर्पण में दिखलाई दे रहा है । स्त्री पुत्र यदि उसके रूप की छाया नहीं हैं तो फिर क्या हैं ? सोचो ! यह सच है या झूठ ।

—❀—

दृष्टान्त (२)—एक लड़का किसी गुम्बददार मन्दिर में गया और 'बम ! बम !!' बोला । वही 'बम बम' गूँजकर उसे सुनाई दिया । लड़के ने समझा—इसमें कोई भूत रहता है, कहने लगा, तू बड़ा ही पाजी है ।' जैसा वह कहता था वैसा ही सुनता था । अन्त में उसने कहा, मैं तो भला हूँ ।'

उत्तर में सुना, 'मैं तो भला हूं ।' 'यदि तू भला है तो गाली क्यों देता है ?' फिर उत्तर मिला, 'यदि तू भला है तो गाली क्यों देता है ?

वह जो कुछ कहता था वही सुनता भी था। किसी बुद्धिमान मनुष्य ने उसको समझाया कि 'गुम्बद में दूसरा कोई नहीं है। तू अकेला है। तेरे ही शब्द तुझे लौट कर सुनाई देते हैं।' तब उसे विश्वास हुआ और वह चुप हो गया।

इसी प्रकार यह संसार गुम्बददार मन्दिर है। जो तुम बोलते हो वही सुनते हो। स्तुति करो, स्तुति सुनोगे। निन्दा करो फिर निन्दा सुनोगे। यह मेरा तेरा पना, व्यवहार, परमार्थ लोक परलोक, भाई बन्धु, कुटुम्ब परिवार, नौकरी चाकरी तुम्हारी ही कल्पना है। तुम्हीं ने इनको उत्पन्न किया, तुम्हीं ने यह सम्बन्ध जोड़ा। जब तक तुम कल्पना में हो यह कल्पनायें फुरती रहेंगी। तुम शान्त हो जाओ। इन सब में भी शान्ति आजायेगी।

दृष्टान्त (३)—एक शीश महल में कोई कुत्ता चला गया। जिधर देखता है उधर कुत्ते ही कुत्ते दिखलाई देते हैं। कुत्ता इन्हें देखकर भूँकने लगा। शीश महल इसके भूँकने से गूँज उठा और वह भूँकते भूँकते मर गया।

इसी प्रकार अपने पराये की बेसमझी ने संसार में हर जगह ऊधम मचा रक्खा है। यदि किसी प्रकार यह पता लग जाये कि यह 'मेरा तेरा पना' केवल कल्पना मात्र है तो यह दशा देखते देखते मिट जायेगी। जब तक 'मेरा तेरा' का भाव मन में बना हुआ है! तब तक शान्ति का मिलना असम्भव है। इस भाव के होते हुए एकत्व भाव की समझ कैसे आ सकती है? एक समय में एक ही विचार तो काम करेगा।

शब्द (प्रार्थना)

१—तू घट का मेरे बासी बने, तेरा ही मन में ध्यान रहे।
तेरा ही सुमिरन भजन हो नित्य तेरा ही नित्य अनुमान रहे॥
२—तू क्या है कौन है क्यों कर है इसकी नहीं मुझे समझ आई।
आँखों को मिले दर्शन तेरा बस यह ही बात परमान रहे॥
३—अव्यापक तू सर्व व्यापक है गुण अगुण सगुण है सब कुछ है।
इनसे नहीं काम मुझे किन्चित तेरा ही मन अस्थान रहे॥
४—सामान्य की मुझको चाह नहीं चैतन्य विशेष की महिमा है।
चैतन्य विशेष की लगन लगे और इसी का निशदिन गान रहे॥
५—मैं रूप का तेरे दरश करूँ पद कमल का स्पर्श करूँ कर से।
सुख मंगल हर्ष हुलास लहूँ तेरे शब्द की ओर में कान रहे॥
६—तू जैसा है मैं वैसा हूँ भृंगी और कीट की देख दशा।
मेरा भाव अभाव सुभाव सभी तेरी निज लीला के समान रहे॥
७—रसना से कहूं राधास्वामी कानों से सुनूं राधा स्वामी।
हृदय में भजूं राधा स्वामी यह नाम जान और प्राण रहे॥

शब्द

दिखादे अपनी जमाली सूरत उठादे मुख से नक़ाब अपना।
जलाल देखूं जमाल देखूँ मिटाऊँ रन्जो अज़ाब अपना॥
कमाल हस्ती है नूर है तू खुशी है दिल का सरूर है तू।
परी है जिन है हूर है तू सुना किताब और हिसाब अपना॥
मुझे तेरी जुस्तजू थी हरदम मुझे तेरी आरज़ू थी हरदम।
मुझे तेरी गुफ़्तगू थी हर दम अबस तेरा है हिज़ाब अपना॥
मुहीत अजज़ाये मुहीत कुल है तेरा ही हर सिम्त शोरो गुल है।
जहां के गुलशन का तूही गुल है दिखादे आबो ताब अपना॥
सवाब क्या जो अज़ाब में हो वह फ़ज़्ल क्या जो अताब में हो।
वह हुस्न क्या जो हिजाब में हो हटा हटा अब नक़ाब अपना॥

प्रार्थना

गुरु ! कीजे मेरी सहाय, बिपत से तड़प रही (टेक)

१—रोग सोग से रही घबरानी, चित् में छाई है हैरानी।
छूटन की कोइ बिधि नहिं जानी, काल करम भरमाय ॥
बिपत से तड़प रही

२—ना जानूँ क्या करम कमाये, जीवन कष्ट कलेश बिताये।
छिन भर भी सुख चैन न पाये, हिया जिया नित अकुलाय ॥
बिपत से तड़प रही

३—राधास्वामी दीन दयाला, काटो आपति का जंजाला।
अपना बल दे करो निहाला, गुण गाऊँ लव लाय ॥
बिपत से तड़प रही

सतगुरु के चरण कमल में

—बन्दना—

१—घट का घर सूना पड़ा है, उसमें आप आजाइये।
दास हूं सेवक हूं सच्चा, अब तो आप अपनाइये ॥

२—काम का मद मोह का, माया का कूढ़ा हट गया।
शुद्ध निर्मल और सुथरी, कोठरी में आइये ॥

३—घट का घर मेरा बने, मन्दिर सोहाना अद्भुती।
मूरती आकर बिराजे, अपनी छवि दिखलाइये ॥

४—मैं तुम्हारा तुम हो मेरे, यह समझ में आ गया।
भर्म और अज्ञान माया, मोह का मिटवाइये ॥

५—आरती साजूँ जलाऊँ, जोत भक्ती प्रेम की।
राधास्वामी ! नाद घन्टा शंख का सुनवाइये ॥

राधास्वामी दयाल की दया ! राधास्वामी सहाय !!